ज्ञानपीठ-लोकोदय ग्रंथमाला, हिन्दी-ग्रंथांक--३०

खेल-खिलौने

राजेन्द्र यादव

●
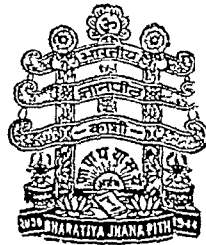
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

यथावत
ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
१९५४

मूल्य दो रुपया

जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस,
इलाहाबाद

समर्पण

जिनके लिये

और जिन्हे आधार बना कर ये कहानियाँ लिखी गयी है,

वास्तवमे भेट तो उन्हे ही देना चाहता था,

लेकिन मेरा दुर्भाग्य,

वे सभी अभी तक जीवित है,

और मुझे अपना भविष्य विशेष अन्धकारमय नही दिखाई देता

इसलिये तबतक,

राजेन्द्र शर्मा को ही

बात सिर्फ इतनी है कि

ये सभी कहानियाँ एक ही समय नही लिखी गई—कही-कही इनका अन्तराल लम्बा है। इन कहानियोका आधार वह भावना या 'बात' है, जो कभी किसी मूडमें मुझे छू गई है। इसलिए हो सकता है पाठकोको इनमे 'दृष्टि' तो मिले, कोई 'कोण' न मिल पाये। यो मै स्वीकार करता हूँ कि इन दोनोको अलग नही रखा जा सकता, जहाँ ये अलग है, वहाँ कही न कही कमजोरी है। मै विश्वास दिलाता हूँ कि अपनी नई कहानियोमे मैं 'दृष्टि' और 'कोण' दोनो को मिलानेमे प्रयत्नशील हूँ। फिर भी ऐसा नही है कि अब भी वे इससे नितान्त अछूती हो। इस दृष्टिसे 'खेल-खिलौने'को 'देवताओ' की मूर्तियोसे पहले आना चाहिए था।

कहानियोकी कलाके क्षेत्रमे यशपाल और अज्ञेयको मैने सफल माना है। प्रोत्साहन और प्रेरणा देने वालोमे स्वर्गीय श्री आर० सहगल, श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, श्री स० ही० वात्स्यायन और 'नई चेतना' के उत्साही साथी प्रमुख रहे है।

कृतज्ञ मैं सबसे अधिक अपने उन पाठको का हूँ, जो अपने स्नेह-पूर्ण सुझावो और बढावोसे मुझे सदैव 'सधने' की शिक्षा देते रहे है।

यो कहानियो पर विभिन्न पत्रो, सम्पादकोकी टिप्पणियाँ, पाठकोकी पसन्द किसका दिमाग नही चढा देती और इस दृष्टिसे खेलखिलौने कहानी न सिर्फ इन कहानियोमे शायद हिन्दीकी पिछले तीन वर्षोकी कहानियोमे सबसे आगे रही है, लेकिन नत मै उस अज्ञात महिलाके प्रति हूँ, जिसने मेरा दम्भ तोडा [और मैने समझा कि यह कहानी जहाँ खत्म होती है, उसका असली प्रारम्भ वही से है, क्योकि जीवन इतना सस्ता और सुस्त नही है।

और अपने उन स्नेही परिचितोको मैं क्या कहूँ जो सब कही अपने आपको पहचान लेते है, शायद इसका कारण यही है कि वे मुझे बहुत अधिक प्रिय है।

राजेन्द्र यादव

विषय-सूची

मेरा तन-मन तुम्हारा है

लीलाने सिर झुकाकर कहा--"सुधाकर, तुम ऐसी परायेपनकी-सी वाते क्यो करते हो, मेरा तन-मन सभी कुछ तो तुम्हारा है ।"

सुधाकर चुप हो गया । उसने लीलाका हाथ वडी कोमलतासे चूम लिया। चाँदनीका अवीर उड रहा था और चाँद अपने सौन्दर्यमें वेहोश था।

लेकिन लीलाके पिताने लीलाके विवाहकी वाते कही और चला दी थी जो काफी तेजी और निश्चयात्मकतासे चल रही थी।

लीलाकी गोदमे लेटकर सुधाकरने कहा—"लीला, यह सब क्या हो रहा है? मुझे तो लगता है जैसे हम और तुम सदाके लिए एक दूसरेसे अपरिचित वना दिये जायँगे। आओ कही चले चले।"

मादकतासे उसके वालोमे उँगलियाँ फिराते हुए लीला वोली--"नही, नही सुधाकर, भगवान् सभी कुछ ठीक करेगे । मै तो सदैव ही तुम्हारी हूँ। कही चलनेमे वडी दिक्कते है—मुसीवते है। और ईश्वर न करे, यदि मेरा तन किसी दूसरेका हो जाय तो मन तो हमेशा-हमेशाके लिए, तुम्हारा है। उसे ससारकी कोई वाधा, ताकत नही छीन सकती।" लीला अन्यमनस्क-सी कही और देख रही थी--उसकी खुली आँखोसे दो जलते आँसू सुधाकरके सलवटदार माथेपर गिर पडे। उसने उन्हे पोछा नही।

और लीलाका विवाह दूसरी जगह हो गया। वह सोने-चाँदीसे लद गई। सुधाकरसे लिपटकर वह खूव रोई। उसने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी आत्मा, उसका मन, हमेशा-हमेशाके लिए सुधाकरका है।

खेल-खिलौने

वडे आदरके साथ जैसे ही हमने दोनो हाथ माथेतक उठाकर नमस्कार किया, कार घुर्रघूं करके हमारे बीचसे चल दी। एक ओर मै खडा था, दूसरी ओर वावूजी। दरवाजेपर झुण्डका झुण्ड बनाये वे लोग झाँकती हुई कारकी ओर हाथ जोड रही थी। जव वे उधर कारकी ओर देखती तो वडी शिष्टता और नम्रतासे मुस्कुरा देती, जैसे वे इसीकी अभ्यस्त है, और जव जरा पीछे हटकर दरवाजेसे वाहर निकल आते किसी वच्चेको झिडकती या क्रुद्ध होकर पीछे धकेलती तो उनकी भवे लपकती तलवारकी तरह माथेपर तन जाती। कारके स्टार्ट होते ही इतनी देरसे लगाये हुए शिष्टताके सारे अनुशासन टूट चुके थे और उन कारवालियोकी मुखर आलोचनाएँ प्रारम्भ हो गई थी—जिनका विषय था, चश्मेकी कमानी, पाउडर, दाँत, मुँह, वाल काढनेका ढग, ब्लाउजकी डिजाइन और कट, साडीकी किनारी इत्यादि। नये आदमियोके सामने जवर्दस्ती चुप किये गये और स्वत डरे हुए वच्चे अव और जोरसे चीजें माँगने लगे थे।

पृथ्वीपर पडे हुए कारके निशानोको देखता हुआ मै लौटने हीको था कि मेरी निगाह सामनेसे आते हुए सुधीन्द्र भाई पर पड गई। शेरवानी, ढीला पाजामा, सैंडल और हाथमे अटैची लिये वह धूलमे सने चले आ रहे थे। मै पूछनेको ही था "लौट आये?" तभी स्वय उन्होने ही पूछ लिया—"कहो भाई क्या हल्ला है? आप सव लोग क्यो यहाँ जमा हो रहे है।" एक विचित्र प्रकारका वुझा हुआ उनका स्वर था।

इससे पहिले कि मै जवाव दूँ छोटी वीराने उछल-उछल कर वता दिया—"सुधीन्द्र भाई साहव, आज नीरजा जीजी को देखने आयी थी

उनकी सास" और वच्चोने खूब उछल-कूद कर एक साथ ही इस बात-को दुहराया—"सास देखने आयी थी।"

फिर भी मैंने पास जाकर उनके कन्धेपर हाथ रखकर गम्भीरतासे बताया "नीरजाकी सुसरालसे कुछ स्त्रियाँ देखने आई थी उसे, अभी तो गई हैं आपके आगे-आगे। हम लोग उन्हे विदा करने आये थे। आप सीधे स्टेशनसे ही आ रहे है न, लाइये अटैची मुझे दीजिये। नलिनीके घर सब ठीक-ठाक है न, तार देकर क्यो बुलाया था ?" अटैची मैंने उनके हाथसे ले ली, लेकिन मुझे लगा सुधीन्द्र भाईके चेहरे पर उत्साह नही था।

"हाँ तो नीरजाको देखनेको आये थे, फिर क्या हुआ ?" उन्होने सिर झुकाकर ओठोकी पपडीको उँगलियोसे टटोलते हुएँ पूछा। हम लोग एक-एक कदम भीतर चल रहे थे। वरामदा पार करके अव हम ड्राइग-रूममे आ गये थे। वावूजी अपने कमरेमे चले गये, जीजी, माताजी, भाभी, बुआ, चाची और छोटे-छोटे वच्चे सव हमसे पहिले ड्राइग-रूममे आ चुके थे। सोफे और कोचपर अव वे लोग वैठ गई थी। वीचकी मेजपर उन देखनेवालोके लिए लाये गये नाश्तेके वर्तन—कप, प्लेटे, चम्मच, चायदानी, गिलास, ट्रे इत्यादि रखे थे। किसी प्लेटमे वाकी वची दाल-मोठ पडी थी, किसीमे वगाली मिठाईको काटता चम्मच। प्यालोके तलोमे थोडी-थोडी चाय बच गई थी। एक वडी प्लेटमे केलोके छिलके, लुकाट और सेवके वीज, सन्तरेकी जाली और टोस्टमे लगानेके मक्खनकी टिकियाके कागज पडे थे। मेज़पर चारखानेका मेजपोश था।

"आओ भाई सुधीन्द्र, आओ।" सभीने हमे देखकर उत्साहसे बुलाया—तुम कव आये ? अभी आ रहे हो ? अरे, जरा देर पहिले आते।" अपने पास बैठनेकी जगह छोडकर बुआने आपसमे वडे उत्साहसे होती हुई वातोका सिलसिला एकदम तोडकर कहा। मैंने अटैची कोनेमे रख दी और वीचकी मेज एक ओर दीवालके सहारे हटाकर उस जगह एक आरामकुर्सी खीच लाया। सुधीन्द्र भाई उसीपर वैठ गये, मै हत्थेपर

बैठ गया। बच्चे इधर-उधर घेरकर खडे उस बचे हुए नाश्ते—चाय, फल इत्यादिकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछने धीरे-धीरे अपनी माँओसे माँगना भी शुरु कर दिया था। बुआने जैसे बिलकुल नई बात हो, सुधीन्द्र भाईको सूचना दी—"नीरजाको देखने आये थे उसकी सुसरालसे, जहाँ रिश्ता हो रहा है न।"

तभी जीजीने एकदम कहा—"मै यहाँ आई कमरेमें कघा लेने, देखा एक चश्मेवाली औरत खडी है। मै एकदम भ्रवक रह गई—हाय राम है कौन यह, यो घुस आई है। उसके पीछे एक और लडकी-सी, फिर एक तेरह-चौदह सालका लडका। पूछा, तो उसने बताया—हम लोग बनारससे आये है, मेरी समझमे नही आया, क्या करूँ। सबसे पहिले जाकर बाबूजी-को जगाया, वे झट तहमद बाँधे ही दौडे। और जब भाभीको बताया, तो चूल्हेमे रोटी डालकर वह भागी कि बस! और भैया, बुआने तो तमाशा ही कर दिया, कभी इस धोतीको उठाये कभी उस ब्लाउजको पहन, 'मै क्या पहनूँ मै क्या पहनूँ' कहती-कहती सारे घरमे ऐसी नाची-नाची फिरी है कि देखते ही हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते।"

"और अपनी नही बतायेगी।" भाभीने हाथ बढाकर कहा—'धोबी मरा कपडा नही दे गया, कहाँ तो परसो ही दे जानेको रो रहा था। लो, कघा भी उसी कमरेमे छोड आई—आग लगे ऐसे घरमे। कोई चीज ठीक जगहपर रखी हुई पाती ही नही। बिन्दीकी शीशी अभी यहा रखी थी, न जाने कौन निगल गया। अपने कामकी चीज हो या न हो बच्चोको उससे खेलना। नाकमे दम है।' और भी बीस बातें। रोई पडती थी बीबीजी।—अरे हाँ हाँ री! क्या है, क्यो जान खाये जा रही है।"

और जीजीकी बात कहती-कहती भाभीने बीराके दोनो हाथ झटक दिये, क्योकि बिना उनकी बातोमे रुचि लिये हुए, वह बार-बार उनका मुँह अपने दोनो हाथोसे अपनी ओर करके ठिनकती हुई दुहराये जा रही

थी—"भाभी केला दिलवाओ एक, बेबीने बगाली मिठाई खा ली, हम भी लेगे।"

झिडकी खाकर वह भी अब शेष तीनो बच्चोके पास चली गई। वे सब नाश्तेकी उसी मेजके चारो ओर घिरे, बाकी बची चीजोका हिस्सा बॉट कर रहे थे—"तूने अपने 'कप'मे ज्यादा चाय कर ली, इतनी ही हमें भी दे। आप तो दाल-मोठकी तश्तरी लेकर अलग बैठ गये, कल हमारे पास पटाखे मॉगने कैसे आ गये थे, तब तो 'अमे बी दो पताके' ! अम्मा देखो इस उमाने चायदानी फोडी।"

"अच्छा हल्ला मत मचाओ।" माताजीने उन्हे झिडककर कहा। उनके आते ही सारे घरमे ऐसी भगदड मची कि बस क्या बताये, कोई इधर भाग रहा है, कोई उधर। हमारे तो भाई, बच्चे भी गजबके है, घर झाडो, साफ करो, एक मिनट बाद फिर वही घूरा-सा करके रख दे। लोगोके यहॉ न जाने कैसे सजे-सजाये घर रहते है। और बैठक तो ये समझो, इस कैलाशने (मैंने) झाड-पोछ दी थी, कबाडखाने-सी पडी थी, कहॉ बैठाते, कहॉ उठाते।

मुझे इस समय अपनी बहादुरी जतानी बडी आवश्यक लगी, फौरन ही बोला—"बैठक मैंने दोपहरको ही झाड-पोछ दी थी। तस्वीरोके चौखटे साफ कर दिये थे, मैंटलपीसपर ये सारे खिलौने ठीक-ठाक रख दिये नही तो आनन्द आता।" और मैंने सब खिलौनो-तस्वीरो इत्यादि पर दृष्टिपात किया।

"जीजी, बच्चा।" इस बार जीजीका बच्चा नाश्तेकी चीजे खत्म हो जानेपर फिर जीजीके पास आ गया था और खिलौनोका नाम सुनकर मैंटलपीसपर रखे चीनीके भगवान् बुद्धकी ओर उँगली उठाकर कह रहा था।

"हॉ बच्चा, जाओ, तुम सब लोग जाओ—बाहर खेलो, देखो सुधीन्द्र भइया आये है—बाते करने दो। जाओ, बेबी, विभास, जाओ सब

वाहर जाओ, इसे भी ले जाओ।" और जीजी स्वयं उठकर सब बच्चोको बाहर कर आई।

"हमने तो समझा था, नीराकी सास कोई बुड्ढी-सी होगी, पुराने खयालोकी; पर वह तो खूब जवान है। फैशनमे रहती है। उल्टे पल्लेकी धोती, चश्मा और लडकेकी भाभी तो फैशनके मारे मरी जा रही थी, देखा नही लिपस्टिक कैसी गाढी-गाढी पोत रखी थी, बार-बार पर्स खोलकर रूमाल निकालती, कभी तहकी तह होठोपर लगाती, कभी माथे-गालोपर—पाउडर तो बोरी भर लगाया था—मुझे तो बडी भद्दी लगी। लडका सीधा था। छोटा भाई है।" जीजीने बैठते ही बताया।

"और देखा, कितना छोटा है, मैट्रिक कर चुका है, और एक ये है कैलाश, ऊँटका ऊँट अभी बी० ए०मे ही पढता है।" माताजीने कहा।

मैं और सुधीन्द्र भाई चुपचाप बैठे थे। यहाँ कोई किसीकी सुनना ही नही चाहता था। एक ही बातको अपने-अपने शब्दोमे कहनेको सभी उत्सुक। समझमे नही आता था किसकी बातको सुना जाय। इन बातोके समाप्त होनेकी कोई आशा ही नही लग रही थी। तभी अचानक बातोके प्रवाहको पलटनेके लिए मैने कहा—"आप लोग तो यहाँ बैठी बाते बना रही है, नीरजा कहाँ है, उसे भी बुला लीजिए न। सुधीन्द्र भाई आये है, न चाय न पानी।"

"वह तो भीतरवाले कमरेमे मुँह ढके पडी है—सिसक रही है। अब बीस बार तो मैं समझा आई हूँ—मानती ही नही है।" चाची बोली।

"क्यो ?" इस बार सुधीन्द्र भाईने अचानक चौंककर मुँह उनकी ओर घुमाया।

"कहती है, मैं शादी नही करूँगी, मुझे पढने दो, अभी मेरी इच्छा नही है। खूब समझाया कि सभी लडकियोकी शादी होती है, तू क्या अनोखी है, और हम लोग क्या हमेशा ऐसी ही है। पर उसने तो न माननेकी जैसे कसम ही खा ली है।" चाचीने फिर बताया।

"और वहाँ लड़का जिद किये बैठा है कि शादी करूँगा तो इसीसे करूँगा—बापसे साफ कह दिया है। फोटो देखनेके बाद यहाँ चुपचाप आकर स्कूल जाते हुए देख गया कही, बस तभीसे जिद किये है। तभी तो ये सब आई थी देखने।" माताजीने कहा, कुछ चिन्तित स्वरमे।

नीरजाके रोनेकी बात सुनकर बातोका उत्साह मन्द पड गया। तभी बाहरसे जीजीका बच्चा फिर उनके पास आ गया—सबके मुँहकी ओर देखकर धीरे-धीरे बोला—"जीजी, वह बच्चा लेगे।" उसकी निगाह मैंटलपीसपर रखी उस बुद्ध-मूर्तिपर थी।

"बात क्यो नही करने देता, सब बच्चे बाहर खेल रहे है और तू यहाँ जमा है।" इस बार उसे माताजीने फटकारा, वह सहमकर चुपचाप खडा हो गया, गया नही। जीजी उसके सिरपर सान्त्वनासे हाथ फेरने लगी। "जिद नही करते मुन्नी।"

"अब नीरजा बेचारी रोये नही तो क्या हो।" मैंने नीरजाका पक्ष लेकर माताजीसे कहा—"आप तो इस बुरी तरह पीछे पड जाती है कि ऐसा गुस्सा आता है कि फौरन लड पडे। नये आदमियोके सामने अधिक हठ भी तो नही कर सकती, और आप है कि उन्हीके सामने पीछे पड गई, यह दिखाना, वह दिखाना। सच, सुधीन्द्र भाई, माताजीने नीरजाकी कोई चीज ऐसी नही छोडी जो दिखा न दी हो उन्हे। क्लासमे कराये गये कटाई-सिलाईके कामोसे लेकर मेजपोश, स्वेटर—सब। यहाँतक कि हाईजीनमे बनाये गये शरीरके विभिन्न अगोके डायग्राम्स तक। अब उन्होके सामने जिद करने लगी कि 'गाना सुना, गाना सुना', मुझे सच बडा गुस्सा आया।"

"सुनाया उसने?" सुधीन्द्र भाईने पूछा। दोनो घुटनोपर अपनी कुहनी रखे, वे धीरे-धीरे अपनी माथेकी सलवटे टटोल रहे थे—बडे चिन्तित, उदास-से।

"सुनाना पडा, सुनाये नही तो क्या करे। वहाँ पीछे पडनेवाले तो

ऐसे-ऐसे जबर्दस्त है, हमारी माताजी, बुआ है, चाची है।" वास्तवमें मुझे नीरजाके दिखानेके ढंगपर बडा क्रोध आ रहा था।

"अब, भई, ये तो समझते नही है" माताजीने अपनी सफाई बडे गम्भीर स्वरमे दी—"लडकियोकी शादीका कितना बोझ माँ-बापपर चढा रहता है इसे तो उनकी ही छाती जानती है, तुम्हारा क्या है, तुमने तो उठाई जबान और दे मारी। लडकियाँ तो सब मना किया ही करती है। हमने अपनी शादीकी बात सुनी थी तो हम भी रोये थे।"

"नीरजा ऐसी लडकी नही है—वह वास्तवमे अभी पढना चाहती है।" मै अडा रहा।

"तो पढनेको कौन मना करता है, अब हमारी तरफसे चाहे जिन्दगी भर पढो। क्यो भई सुधीन्द्र ?" माताजीने सुधीन्द्र भाईका समर्थन प्राप्त करनेके लिए उनकी ओर पजा फैलाकर पूछा।

पर माथेकी सलवटे उँगलियोसे टटोलते हुए वे न जाने कबसे क्या सोच रहे थे। जबसे आये थे, उनकी यह उदासी मुझे अखर रही थी। जीजीका बच्चा (उसे प्यारमे वह 'पापा' कहती थी।) अब भी भगवान् बोधिसत्त्वकी मूर्तिके लिए हठ कर रहा था। मुझे उसका यह हठ करना बुरा लग रहा था। हम सब लोग बाते कर रहे थे पर उसे जैसे वही धुन। इस मूर्तिको ग्यारह रुपयेकी मै विशेष रूपसे प्रदर्शनीसे लाया था। वास्तवमे उसकी चीनी बहुत बढिया थी। माताजीकी बातपर कोई कुछ नही बोला—थोडी देर सब चुप रहे आखिर मुझसे नही रहा गया, मैंने पूछ ही लिया—"क्यो सुधीन्द्र भाई, जबसे तुम आये हो, बहुत उदास और सुस्त-से हो। क्या बात है ?"

"हाँ रे, तू जबसे चुप ही है, सब लोग ऐसे जोर-जोरसे बोल रहे है।" माताजीने एकदम इस प्रकार कहा जैसे विषय बदलकर बोल रही हो, पर वह वास्तवमे इतनी देरसे उनकी बातका समर्थन न करनेकी सफाई माँग रही थी।

"मै ?" बडे भर्राये-से गलेसे उन्होने कहा, फिर एकदम गला साफ करके सयत स्वरमे बोले—"मै ! नही, कोई खास बात नही है।"

"तो भी ?" मैने पूछा "आपने बताया नही नलिनीके यहाँ कैसे है—तार क्यो दिया था ?"

"कौन नलिनी ?" जीजीने धीरेसे पूछा बुआसे, "मुझे तो नही मालूम।" कहकर उन्होने प्रश्न-मुद्रासे चाचीकी ओर देखा, चाचीने माताजीकी ओर।

"सुधीन्द्रकी धर्म-बहिन है एक, मुरादाबादमे।" माताजीने बताया, फिर स्वय जाननेकी इच्छासे सुधीन्द्रकी ओर देखा।

सुधीन्द्र भाई एक ओर मुँह घुमाये दरवाजेमेसे अन्यमनस्कसे बाहर देख रहे थे, उसी प्रकार बिना हिले-डुले उन्होने कहा, "नलिनी मर गई।"

'झन्न'से जैसे हम लोगोके बीचमे थाली गिर पडी हो। एक-साथ सबके मुँहसे निकला—"नलिनी मर गई ?—कैसे ?" हम बुरी तरह चौंक उठे।

सुधीन्द्र भाई उसी प्रकार अविचलित रहे, एकदम झटकेसे उन्होने गर्दन घुमाकर माताजीकी ओर मुँह किया—फिर सूनी आँखोसे देखते हुए बोले—"हाँ, नलिनी कल साढे नौ बजे मर गई। तार देकर उसने मुझे बुलाया था।"

"कैसे ?" एक बार सबके मुँहसे निकला। जीजीने माताजीसे पूछा, क्या उमर थी।" माताजीने हाथसे उन्हे चुप रहनेका इशारा किया, और मुँहपर सारी उत्सुकता लाकर सुधीन्द्र भाईके मुँहकी ओर देखने लगी।

"कैसे मर गई ?—जैसे सब मर जाते है।" धीरेसे वह हँसे—कितनी व्यथा-भरी उनकी वह हँसी थी, जैसे मेरे हृदयमे जाकर ज़ोरसे वह लरज उठी। उनका सिर झुक गया था। दोनो हाथोकी उँगलियोको

एक दूसरेमे फँसा, उन्हे जोडे हुए वे कुछ क्षण सोचते रहे। एक गहरी साँस छोडकर उन्होने झटकेसे सिर उठाया। "कैसे मर गई, एक लम्बी कहानी है। क्या कीजिएगा सुनकर।"

अब वातावरण एकदम वदल गया था। अभी होनेवाली वहस और आलोचनाएँ न जाने कहाँ चली गई। सुधीन्द्र भाईकी उदासीका ऐसा कोई कारण होगा मैने सोचा भी न था। "क्या उम्र थी?" जीजीने सीधे ही पूछ लिया।

"उम्र?—पूरे इक्कीसकी नही थी। यह मेरे पास फोटो है।" उन्होने अचकनके भीतर हाथ डालकर पर्स निकाल लिया—उसे खोलकर उन्होने जीजीकी ओर वढा दिया—उसमे एक पासपोर्ट साइजका किसी लडकीका फोटो लगा था।

बडी उत्सुकतासे जीजीने फोटो लिया—चाची, बुआ, माताजी सभी उसपर झुक गई। "लडकी वडी सुन्दर है। मुँहपर कैसा भोलापन है। आँखे वडी प्यारी है। सीधी सी लगती है।" सभीने अपनी-अपनी राय दी। खूब देखनेके वाद जव वह पर्स उन्हे लौटाया गया तो इतमीनानसे देखनेके लिए मैने ले लिया। लडकी वास्तवमे वडी सुन्दर और आकर्षक थी।

"कैसे मर गई? क्या किस्सा है, सुनाओ तो सही जरा।" जीजीने आग्रहसे पूछा। सभी लोग इसी आशासे उनकी ओर देख रहे थे।

"क्या करोगी, पूरा किस्सा है—लम्बा", सुधीन्द्र भाईने टालना चाहा।

"हमे अव क्या करना है, पूरा सुनाओ, तुम उसे कैसे जानने लगे।" जीजीने पास खडे अपने पापाके दोनो हाथ पकड़कर कहा, क्योंकि हाथ-पैरोसे उसकी खिलौना लेनेकी मूक जिद जारी थी। मुझे वडा वुरा लग रहा था। ऐसे जिद्दी वच्चे मुझे जरा भी पसन्द नहीं हैं। मैने कहा—"पूरा तो सुनाओ—इस पापाको तो सँभालिए जवसे अडा हुआ है, यह जिद मुझे जरा भी पसन्द नहीं है।"

"नही-नही अब कहाँ जिद कर रहा है।" जीजीने उसके दोनो हाथ पकड लिये थे, लेकिन पैरोको जमीनपर क्रम-क्रमसे पटकता हुआ वह मचल रहा था।

बात कहाँसे शुरू करे शायद सुधीन्द्र भाई यही बडी गम्भीरतासे सोच रहे थे। लोग सुननेके लिए उत्सुक है या नही उन्होने अपने उदास-से नेत्रोसे चारो ओर देखा। सिवा उस बच्चेके जो अब डरकर चुप हो गया था किन्तु गया नही था, सभी लोग उनकी ओर देख रहे थे। उन्होने माताजीकी ओर देखकर कहना प्रारम्भ किया—"भाभीजी, जिन दिनो आप बदायूँ थी न, सन् पैतीसकी बात है, शायद मै पिताजीके पास गाँवमे ही था। तभीका किस्सा है, लीजिए अब आप नही मान रही तो सुनिये—शुरूसे बता रहा हूँ। हाँ तो होऊँगा कोई छ सात सालका! तभी शहरसे पिताजीके दोस्त देवनारायण वकील आये उनके पास। पिताजीने बुलाया था। पिकनिकका प्रोग्राम था। तभी मैने पहिली बार नलिनीको देखा था। बालोमे रिबन बाँधती थी। रग-बिरगे फ्राकपर हल्के हरे रगका छोटा-सा चेस्टर पहिने वह बिलकुल गुडिया-सी लगती थी। मै लाख जमीदारका लडका सही, लेकिन था तो गाँवका ही। गेलिस लगाकर एक ढीला-ढाला हाफ-पेण्ट और एक कोट पहिने था। उससे बोलनेकी बडी इच्छा होती थी, पर-सकुचित होकर रह जाता। सुबह छ बजे ही वे लोग कारसे आ गये थे, वकील साहब भीतर थे, पिताजीसे बाते कर रहे थे। हम दोनो नाश्ता इत्यादि करके बाहर धूपमे दूर-दूर ही घूम रहे थे, शायद सकोच यह था कि कौन पहिले बोले। हमारे घरके सामने ही थोडी-सी जगह छोडकर आम रास्ता था उसके दूसरी ओर एक छोटा-सा कच्चा तालाब—पोखर। उसमे आठ-दस बतखे तैर रही थी, हम लोग थोडी देर उन बतखोको देखते रहे, कभी-कभी कनखियोसे एक-दूसरेको भी आपसमे देख लेते। अचानक अपने हाथोको अपनी जेबोमे और भी अधिक धँसाकर वह बोली, "देखो, कितना जाडा है, बतखोको जाडा ही नही

लग रहा।" मैंने धीरेसे कहा, "ये तो ऐसे ही तैरती रहती है।" इसके बाद तो वह बिल्कुल मेरे पास आकर दुनिया भरकी बाते करने लगी। उसके बोलनेके बेझिझक ढगको देखकर तभी मैं चकित रह गया। दुनिया भरकी तो उसे बाते याद थी, और बडी बातूनी। उसने सब बताया जिस स्कूलमे वह पढती है उसमे कौन टीचर अच्छी है कौन बुरी; किस-किस लडकीसे उसकी अधिक मित्रता है। जिस 'बस'मे वह जाती है उसका नम्बर क्या है। खैर उस दिन उसने खूब बाते की। मैं बिलकुल चुप रहा क्योकि मेरे पास कुछ भी नही था। फिर भी हम दो दिनोमे खूब घुल-मिल गये थे। कैरम वह बडा अच्छा खेलती थी। और ताश, लूडो, स्नेकलैडर, ट्रेड, ओम्नीबस न जाने क्या-क्या तो वह खेल लेती थी। एक दिन बैठकर उसने मुझे शतरजकी चाले समझाई। पर भई, मेरी समझमे तो कुछ आया नही। खैर पिकनिकके पश्चात् जब वे लोग चले गये तो अचानक मुझे लगा जैसे दुनियामे कोई काम करनेको ही नही रह गया है। फिर तो जब भी पिताजीके साथ शहर जाते उनके यहाँ जरूर जाते। लेकिन थोडे दिन घर रहकर वह अपने किसी सम्बन्धीके यहाँ चली गई।

"मेरी पढाई भी चलती रही।" सुधीन्द्र भाई कुछ रुके। तभी मैंने देखा, धीरे-धीरे कुनमुनाता हुआ वह पापा रह-रहकर जीजीको नोचता हुआ अपनी जिदको चालू रखे हुए है। अदम्य इच्छा हुई, जोरसे एक चाँटा मारकर धकेल दूँ। न बाते करने देता है, न कुछ सुनना है। बडे लाड़ले आये। पर जैसे-तैसे अपनी इस इच्छाको दबाया। निश्चय कर लिया कि इस बार इसने बातोमे जरा भी विघ्न डाला तो कान पकडकर बाहर निकाल दूँगा फिर चाहे जीजी जो बकती रहे।

"मैट्रिक कर लेनेके पश्चात् वकील साहबमे और पिताजीमे यह एक अच्छा खासा विवाद उठ खडा हुआ कि कॉलेजमे पढाई जारी रखनेके लिए मै हॉस्टलमे रहूँ या वकील साहबके यहाँ। पिताजी हॉस्टलके पीछे

पड़े हुए थे क्योंकि दो-चार महीनेकी बात होती तो कुछ नही था। खैर मैं यहाँ हॉस्टलमे आया। वकील साहवने आज्ञा दे दी कि दिनमे एक बार यहाँ जरूर आओगे। हॉस्टलमे अच्छी तरह जम लेनेके बाद मै वकील साहबके यहाँ जाने लगा। एकाध घटा बैठता और चला आता। वकीलनी (जिन्हे मैं चाची कहता था) और वकील साहवसे ही बाते करता था। बातोमे वह नलिनीकी तारीफ करते, हमारी नलिनी ऐसी है, वैसी है, यो पढनेमे तेज है, यो खेलनेमे होशियार है। एकाध बार तो मैने सुना, फिर तो मुझे झुँझलाहट आने लगती। क्योंकि उसकी प्रशसा करते वह थकते नही थे और मुझे लगता था जैसे उनके कहनेका बस इतना ही मतलव है—तुम चाहे जितने होशियार हो, नलिनी तुमसे लाख दर्जे इटलिजेट है। अक्सर वह पूछते, कुछ तकलीफ तो नही है। रोज ही कुछ न कुछ खिला देते। मैने वहाँ सैकेड-इयर किया, और छुट्टियोके पश्चात् जब मै वहाँ गया तो वताया गया कि नलिनी अब वही आ गई है। मेट्रिकमें फर्स्ट पास हुई है, सैकेड पोजीशन है। यही पढेगी। कभी-कभी मै उसके विपयमे सोचा करता, न जाने कैसी होगी। हम लोग सन् छत्तीसमे मिले थे और अव था पैतालीस। नौ-दस वर्पका अन्तर वहुत होता है। तभी वकील साहवने उसे बुलाया, "चाय ले आओ नलिनी।" और नलिनी चायका ट्रे लेकर आई। मै वुरी तरह चौक गया, पहिली जो कुछ धुँधली नलिनी मेरे मानस-पटलपर थी उसकी इससे कोई तुलना नही थी। हमने सज्जनतामे नमस्कार किया। नलिनीने चायका ट्रे रखकर नमस्कारका उत्तर दिया, मुस्करा कर, और वेझिझक वकील साहवके पास बैठ गई।

"भाई साहव, फर्स्ट डिवीजनमे पास होनेकी मिठाई तो खिलवाइये।" मै चकित रह गया, लाख वचपनमे मिले सही लेकिन मै तो एकदम किसी लडकेसे भी इस तरह नही बोल सकता। फिर वह तो पन्द्रह वर्पकी एक लडकी थी जो धोतीमे सिमटी-सिमटाई-सी अपनेमे ही लीन हो जानेकी

चेष्टा किया करती है। पर न तो उसकी वाणीमे, न व्यवहारमें, किसी प्रकारकी झिझक, सकोच या लज्जा मुझे लगी, इसके विपरीत मै स्वयं ही सोचमे था कि क्या उत्तर उसे दूँ। चाय वन गई थी तभी अपना कप उठाकर वकील साहवने कहा—"तुम तो इसे भूल-भाल गये होगे, यह तो वही नलिनी है जो तुम्हारे यहाँ गई थी, यह चुडैल कुछ भी नही भूलती—न मालूम वचपनसे ही ऐसी याद्दाश्त लेकर पैदा हुई है। छोटी-से-छोटी वात सव इसे याद है।"

"इन्हे क्यो याद होगा—हारते थे न, जिस खेलको देखो उसीमे गोल रखे थे। मिठाई चाहे जव खिलवाइये लेकिन चाय क्यो ठण्डी किये डालते है?" और वह कुटिलतासे मुस्कराकर कपपर झुक गई। मै उसकी ओर सीधा देखनेका साहस नही कर सका। इधर-उधर भागती दृष्टिको समेटकर उस ओर लानेकी चेष्टा करता, पर जैसे वह वहाँ पहुंचकर किसी शक्तिसे छिटक उठती। उसके इस उत्तरपर भी मै कुछ नही वोला।

"भाई साहव! आप तो वहुत ही शर्माते है।" उसने फिर कोचा। इस वार मेरा सारा सकोच जैसे इस वाक्यकी प्रतिक्रियासे क्षोभ वन उठा। वडी असभ्य लडकी है, मनमे सोचा, जवसे आई है कुछ-न-कुछ वोले ही जा रही है। जव मै नही वोलना चाहता तो मेरे पीछे क्यो पडी है। मैने कहा—"आप तो मुझसे अच्छी तरह पास हुई है आप पहिले, खिलाइये न।"

"या तो विल्कुल ही नही वोल रहे थे, और अव वोले तो ऐसी शिष्टतासे वोले कि छोटे वडे सवका ध्यान भुला दिया।' जल्दीसे चायकी घूँटको घूँटकर वह वुरी तरह हँस पडी। हाथका कप काँप गया और चाय छलक गई। वकील साहव इस सारे वातावरणका आनन्द ले रहे थे। वनावटी क्रोधसे वोले—"क्या कर रही है, तमीजसे वात कर, सारे कपडे खराव किये लेती है?" मुझे वकील साहवपर क्रोध आ रहा था यह तो नही कि ठीकसे डाँटे, तभी तो इतनी वेशर्म हो गई है। लड़कियोंके इतने निर्लज्ज

होनेके मैं खिलाफ हूँ। यही चीज तो उनमें अन्य चारित्रिक दुर्बलताओंको जन्म देती है . और भी मैंने उसके विषयमें न जाने क्या-क्या उलटा सीधा सोच डाला। बातोंका उत्तर तो मैंने उस समय दिया, पर मुझे उसका बेझिझकपन अधिक पसन्द नहीं आया, और वकील साहब थे कि अपनी बेटीकी इस बहादुरीपर फूले पड़ते थे। माँ-बाप ऐसा लाड-प्यार करते हैं तभी तो लड़कियाँ बिगड़ जाती हैं। सामने तो बड़ी इतराती रहेगी और सैकड़ों सिनेमा-उपन्यासोंके दृश्य उस समय मेरे सामने आये। जब वही इतनी बेशरम है तो मैं ही क्यों हयादार बना रहूँ—सोचकर मैंने सारा संकोच छोड़ दिया। उसकी ओर देखा, वह सुन्दर थी पर स्त्रियोंमें एक स्वाभाविक लज्जा, हल्का-सा संकोच रहता है, वह असुन्दरको तो सुन्दर बनाता ही है, वह जैसे सुन्दर पर भी कलई कर देता है—पर वहाँ कुछ नहीं, वही सपाट मुँह। हाथमें केवल दो सोनेकी चूड़ियाँ। ऊपरसे नीचे तक कुछ नहीं। उल्टे पल्लेकी धोती, सो भी कन्धे-पर झूल रही थी—नये आदमीके सामने जाते हैं तो थोड़ा सिरपर रख लेते हैं। मैं सोचने लगा इस लड़कीको इतना निर्लज्ज बना देनेमें इसके इस सौन्दर्यका कितना हाथ है। जब चलने लगा तो बोली—"देखिए भाई साहब, मुझे इस बार तीन इम्तहान देने हैं। कालिजमें इन्टरका तो है ही, एक विशारद और दूसरा एक संगीतका। कहिए कैसा रहेगा?"

"बड़ा अच्छा रहेगा।" कहा हमने, पर सोचा शायद यह दिखाना चाहती है कि मैं कितनी पढ़ाकू हूँ।

"संगीतके लिए हमने एक ट्यूटर लगा लिया है, सत्तर रुपये लेगा। विशारद हमें आप करायेंगे।" उसने एक बार वकील साहबकी ओर देखा। मैं इस अप्रत्याशित बोझसे जैसे अचकचा उठा। वकील साहब बोले—"हाँ दिलवा दो भई, पास तो यह हो ही जायेगी, लेकिन तुम तैयारी करा दोगे तो जरा अच्छी तरह पास हो जायेगी। हिन्दीके तुम विद्वान् भी हो, सब जानते हो। ठीक रहेगा। सन्ध्याको चाय यहीं पिया करो।"

"हाँ-हाँ।" करके मैंने स्वीकृति दी। उस समय तो मुझे यह विश्वास हो गया था, इस लडकीको अपने सौन्दर्यका गर्व है। इसीलिए यह इतनी निर्लज्ज है। उसे गर्व है तो रहा करे---गर्व करनेवालोंके लिए यहाँ भी गर्व कम नही है। दो-एक दिन तो पढाऊँगा, ठीकसे पढी तो ठीक है, जरा भी तीन-पाँच की तो उसी दिन छोड दूंगा, कोई बहाना बना दूंगा। ज्यादा-से-ज्यादा वकील साहब बुरा ही तो मानेंगे। इस क्षोभ और द्वन्द्वके भीतर कभी मुझे लगता जैसे कोई बडे मृदुल स्वरमे पूछता---'किन्तु यह नलिनी है कैसी लडकी?' खैर उस दिन, दिन-भर मैंने उसके विषयमे जो भी सोचा वह अधिक अच्छा नही था। उसको लेकर मैंने न जाने किन कुकृत्योकी कल्पना की।

"और सन्ध्याके समय मै उसके पास जाने लगा, उसे पढाने। भाभीजी, जब आज भी उन बातोको सोचता हूँ तो शर्मसे गर्दन झुक जाती है। किसीके विषयमे इतनी जल्दी सम्मति बना लेना कितना खराब है, खतरनाक है। सच कहता हूँ मै, उस जैसी बुद्धिवाली लडकी मैंने जिन्दगीमे एक भी नही देखी। ओफ! क्या दिमाग पाया था उसने। किसी भी बातको एक बार समझा दो, कम-से-कम इस ज़िन्दगीमे दूसरी बार समझानेकी जरूरत ही नही। कभी कापीमे मीनिंग या नोट्स नहीं लेती थी। और इतनी सुन्दर लिखाई कि क्या कहूँ। एक किताब पढ लेती तो शब्द-प्रतिशब्द वह उसे महीनो याद रहती, बहुत-से स्थानोपर वह मुझे पढाती थी या मै उसे, यह मै आज तक नही जान पाया। मै उसे बडे ध्यान और गम्भीरतासे पढाता और वह बडे आनन्दसे पेन्सिलसे खेलती या पेनमे नाखून रँगा करती। मै झुँझलाकर एकदम पूछ बैठता "बताओ मैंने क्या बताया?" और वह मेरा प्रत्येक शब्द दोहरा देती। मै आश्चर्य करता यह लडकी है या आफत! पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, और भी न जाने कितने कवियोकी सैकडो कविताएँ उसे याद। मै कठिन-से-कठिन काम उसे करनेको देता और वह बडी आसानीसे सिर हिलाकर स्वीकार

कर लेती, यह तो रही उसकी कुशाग्र बुद्धि। लेकिन मैं बताना यह चाहता हूँ कि वह लडकी असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न थी। उसके निवन्ध देखकर उसके मनन पर सिर खुजाना पडता था। उसकी कहानियाँ देखकर आँखे फटी रह जाती थी। मैने उसे तीन वर्ष पढाया। इस बीचमे उसकी प्रत्येक अच्छी-बुरी बात देखनेका मोका मुझे मिला। अब इसे आप चाहे जो कुछ भी कहिए—मेरी दुर्बलता या बुद्धिमानी—मैं उसकी एक-एक बातका भक्त वन गया। उसका सगीत देखा तो दाँतो तले उँगली दबानी पडी, केवल यही नही कि बाजेको पीट-पाट लिया, और उलटे-सीधे सिनेमाके गीत गा लिये। वास्तवमे उसका स्वर था, उसे सगीतका ज्ञान था। महादेवीके गीत इस तरह सुनाती थी कि बस, तबियत झूम उठे।" कहकर सुधीन्द्र भाई कुछ देरके लिए रुके कि उनकी यह प्रशसा अतिपर तो नही पहुँच गई है। माताजीकी ओर देखकर फिर उन्होने खिलौना लेनेके लिए अपनी मूक जिद जारी रखते पापाको शून्य आँखोसे देखा। फिर कहा—"भाभीजी, आप सोचेगी मैं व्यर्थ ही उसकी इतनी प्रशसा करके उसे आसमानपर क्यो रखे दे रहा हूँ। लेकिन मुझे वास्तवमे ऐसा लगता है उसकी पूरी बात कह ही नही पा रहा हूँ। खैर, तब मैने जाना कि क्यो यह लडकी निडर, निर्भीक और बेझिझक है, क्योकि उसके हृदयमे भय, कलुष, या उलझन नही है। वह उन लडकियोमेसे नही है जो मनमे हजार उल्टी-सीधी बाते रखते हुए भी ऊपरसे अपनेको बिल्कुल निर्लिप्त दिखाया करती है। और उसके स्वभावकी वह सबलता, वाणीकी तीव्रता, मुक्त हास्यकी चचलता उसके रूप-गर्वके प्रतीक नही हैं, वरन् वह उसकी प्रखर प्रतिभाका प्रचड विस्फोट है, जो उसके व्यक्तित्वके इन सब रूपोमे दिखाई देता है। हो सकता है मैं उसकी प्रशसा करनेमे सन्तुलन न रख पा रहा होऊँ, पर वह लडकी वास्तवमे ऐसी थी, जैसी दो-चार मुहल्लोकी तो बात ही क्या, दो-चार शहरोमे नही होती। कही चलते-फिरते उसने नई बुनाई देखी, सटसे उसे घरपर आकर डाल लिया। न किसीसे पूछनेकी जरूरत न सीखनेकी . "

"तो ऐसी तो हमारी नीरजा भी है, जहाँ जो भी देखेगी फौरन उसे ज्यो-का-त्यो दिमागमे रख लेगी।" एकदम माताजीने कहा—मनमे हल्की झुँझलाहट हुई। पता नही माताजी सुधीन्द्र भाईकी बात सुन रही है या तुलनामे लगी है।

"तो ऐसी वह लडकी थी।" माताजीकी बातको स्वीकार करके सुधीन्द्र भाई बोले, "मै उसे पढाता था किन्तु इस बातका निश्चय मुझे हो गया कि यह केवल सयोग है, जो मै उससे पहिलेसे पढते होनेके कारण उससे आगे हूँ और उसे पढा रहा हूँ, नही तो इसे स्वीकार करनेमे मुझे कोई झिझक नही कि वह मुझसे कई गुनी अधिक बुद्धिमती, प्रतिभा-शालिनी थी। सबसे बडी बात जो मैने उसमे नई देखी वह यह कि किसीकी अप्रत्याशित बातसे एकदम प्रभावित नही होती थी, इसीलिए प्राय वह भावुक नही थी। जब मै उसकी उन बेझिझक खुली आँखोमे देखता तो लगता न मालूम कितने गहरे खुले आकाशको मै देख रहा हूँ, जिसका कही भी ओर-छोर नही है। मुझे निश्चय हो गया कि यह लडकी किसी दिन सारे देशको अपनी विलक्षण प्रतिभासे चकित कर देगी।

"खैर, मै उसे पढाता रहा। एक दिन उन चाचीने बताया कि अपने जिन सम्बन्धीके यहाँ वह पहिले 'मैट्रिक' तक पढनेको रही थी, शायद वे उसके चाचा थे, उनका पत्र आया है। उन्होने लिखा है कि नलिनीके लिए लडका उन्होने ठीक कर लिया है, लेकिन नलिनीने स्पष्ट कह दिया कि उसका विचार अभी शादी करनेका कतई नही है। अभी वह थर्ड ईयरमे ही पढती है, कम-से-कम एम० ए० तक वह इस विषयपर सोचेगी भी नही। फिर दूसरा पत्र आया वह लडका इसी मुहल्लेका है, हमारी ही जातिका है, पिछले आठ-दस सालसे मै उसे देख रही हूँ—बडा सुशील और सीधा लडका है। उसीने नलिनीको मैट्रिकके लिए इग्लिश पढाई थी—नलिनी भी उसे जानती है। घर काफी सम्पन्न है—वह सुखी रहेगी, पास रहेगी। लेकिन नलिनी भी एक नम्बरकी जिद्दी लडकी—

एक नही मानी। फिर तीसरा पत्र आया—उस लडकेने नलिनीमे पता नही क्या देखा है कि अपने बापसे स्पष्ट कह दिया है कि शादी करूँगा तो इसी लडकीसे, नही तो बिल्कुल नही। इसी विषयमे वे मुझसे सलाह लेने आई थी कि अब क्या करे? नलिनी पास बैठी सब सुन रही थी। मै कुछ राय जाहिर करूँ इससे पहिले वह स्वय बोली—"पता नही क्यो लडकोको शादी करनेकी ऐसी जल्दी पडती है। लाइए मै उन्हे लिख दूँ सीधा, कि मै आपसे शादी नही करना चाहती।" मैने उसकी ओर देखा, शायद वह मजाकमे कह रही हो, पर उस समय वह काफी गम्भीर थी। मै उस ओर देख नही सका। वकीलनीने कहा, समझाओ इसे। यद्यपि मन ही-मन मैने स्वीकार किया कि नलिनीकी बात ठीक है, जब वह पढना चाहती है तो उसे पढने देना चाहिए। तो भी मैने यो ही कहा—'जब वह इतना हठ पड रहा है तो मान जाओ न, कर-करा लो उसीसे शादी।'

"उसने मुझे ठीक इस तरहसे देखा, जैसे किसी बच्चेको देखते हो और वह झिडककर बोली—'आप भी क्या बात करते है, भाई साहब, बच्चो-जैसी। अब अचानक मै ही आपसे कहने लगूँ कि मुझसे शादी कर लीजिए, तो कैसे हो सकता है। न मैने उन्हे कभी इस दृष्टिसे देखा, न मेरे मनमे कभी ऐसी बात आई।' उसके मुखपर उत्तेजना थी। उसका मुख-मडल प्रदीप्त था।

"मुझे हँसी आई—कैसी मूर्खताकी उपमा इसने दी है। कहा—'न सोचा न सही, तब भी इसमे हर्ज क्या है?'

'हर्ज क्या है?' उसने बच्चोकी तरह मुँह बिरा दिया—"हर्ज है कैसे नही, ऐसा हो नही सकता। मैने उन्हे सदैव गुरुकी पूजा और भाईकी पवित्र दृष्टिसे देखा है। जिस तरह आप हम लोगोमे काफी घुल-मिल गये है न, ठीक वैसी ही उनकी बात है वहाँ। मैने कभी सोचा भी नही था कि एक दिन वे इस प्रकार हठ करके बैठ जायेंगे कि मै शादी करूँगा तो

इस नलिनीसे ही करूँगा।" वह थोडी देर चुप रही, फिर जैसे स्वय ही सोचती-सोचती बोली—'हिश्, मै नही करूँगी शादी-वादी।'

"खैर, मै चुप रहा। दो-तीन दिन फिर उसी स्वाभाविकतासे कटे। एक दिन गया तो पता चला कि उसके वही चाचाजी आये हुए है। उस दिन नलिनी बडी चिन्तित—उदास थी। उसने बताया, 'आज रात-भर मै ठीकसे नही सो पाई, चाचाजी आये है, बता रहे है कि लडकेको भी जिद आ गई है कि शादी बस इसीसे होगी। उसने तीन-चार दिनसे अनशन कर रखा है। जब मै शादी नही करना चाहती तो क्यो ये लोग मुझे विवश कर रहे है कि मे शादी करूँ ही। अब आप ही बताइए मै क्या करूँ। चाचाजी इसीलिए आये है, ये लोग किसीका आत्मविकास होते नही देख सकते। मै बुद्धिमान हूँ, मै प्रतिभाशील हूँ, मै सुरीला गाती हूँ, सुन्दर बजाती हूँ और सौन्दर्यशालिनी हूँ,—फिर ? कहिए, आपको इन सब बातोसे क्या मतलब ? आपको यह कैसे विश्वास हो गया कि मैने यह सब चीजे आपके ही लिए सहेज कर रखी है। इसमे मेरा अपना कुछ नहीं है ? अजब आफत है।' और क्रोध अथवा घृणासे उसने अपना निचला ओठ ज़ोरसे चबाया। मै चुपचाप देखता रहा। उसके वाक्योमे सत्यकी ज्वालाएँ थी। लेकिन मै, उस समय, क्या कर सकता हूँ—समझमे नही आता था। उसे समझाया "शादी तो नलिनी तुम्हे करनी ही है अब नही तो दो वर्ष बाद। फिर तुम्हे अब ही ऐसी क्या आपत्ति है ?"

'तो आपको ऐसा अधिकार किसने दिया कि आपने तो मुझे देखा, और खटसे मचल पडे, अनशन कर दिया कि मै तो इसीसे विवाह करूँगा—और हम सोच भी नही पाये कि सारे घरवाले चील-कौवोकी तरह नोचने-खोचने लगे—कर इसीसे, कर इसीसे।' उसकी आँखोमे, पहिली बार मैने देखा आँसू आ गये थे, जिन्हे वह एक घूँट-भरके पी गई, फिर बोली—'भाई साहब, आप तो समझेगे, मै और लडकियोकी तरह बहानेबाजी कर रही हूँ पर मै हृदयसे कह रही हूँ, मुझे शादी करनेकी इच्छा ही नहीं

है।' वह चुपचाप कुछ सोचती रही। फिर बोली—'चाचाजीने मुझे रातको कोई दो घटे लेक्चर पिलाया, नाश्तेके समय सुबह समझाया और अभी बाहर गये है आकर फिर भाषण देंगे—माताजी, बाबूजी—सभी मेरे पीछे पडे है। अब आप भी मैं क्या करूँ भाई साहब, इससे अच्छा तो मै कही मर जाती।' उसकी इस अन्तिम बातसे अचानक मैं चौंक गया। यह उसके मुँहसे निकला हुआ पहिला वाक्य था जो उसने जैसे व्यथासे तडपकर कहा था। मै स्वय भी उन दिनो काफी उद्विग्न, बेचैन, व्यथित हो रहा था। मेरी स्थिति बडी विचित्र थी, यदि मैं शादीका विरोध करता तो वे लोग मेरे और नलिनीके विषयमे न जाने क्या-क्या सोचते। पर फिर भी, बार-बार जैसे कोई ललकार कर पूछता—'क्या मै उसके लिए कुछ नही कर सकता ?—क्या नही कर सकता कुछ ?' और यह प्रश्न ही घमककर ध्वनि-प्रतिध्वनिके रूपमे व्याप्त हो जाता कि उसके उत्तरके विषयमे मैं सोच ही नही पाता था। बडा खिचाव शिराओमे था। मैंने दुखी स्वरमे कहा—'क्या बताऊँ नलिनी, मै स्वय भी कोई राह नही सोच पाता !. तुम्हारी प्रतिभाका मै शुरूसे ही कायल हूँ। मेरा विश्वास था कि यदि यो ही तुम्हारा स्वाभाविक विकास होता गया, तो तुम एक दिन अपनी प्रतिभासे ससारको चकाचौंध कर दोगी। पर अब ।"

अचानक सुधीन्द्र भाई अपनी बात कहते-कहते रुक गये, क्योकि मैंने आगे बढकर उस जिद्दी पापाके दोनो कान पकड लिये थे। गुस्सा तो ऐसा आ रहा था कि दो मारूँ तानकर चॉटे—तबियत ठिकाने आ जाय। बडे लाडले बने है, जबसे मना कर रहे है कि मान जा मान जा तो समझमे ही नही आता। सब बच्चे बाहर खडे है और ये बेचारे यहाँ खडे है, अकेले, यहाँ खिलोना लेनेको। ले खिलोना, अब तुझे कैसा खिलौना देना हूँ। दोनो कान खीचते ही पापा जोरसे चीखा, एक बार उसने मेरी क्रुद्ध सूरत देखी और जीजीका पल्ला पकड लिया।

"अरे, क्या कर रहा है रे . " माताजी चिल्लाई—"क्यो उनके

कान उखाडे ले रहा है ?" मै उसके कान यो ही खीचे-खीचे वाहर ले चला।

"हाँ ले जा, ले जा, जबसे समझा रहे है तो मानता ही नही है।" जीजीने वनावटी गुस्सेसे कहा, वास्तवमे उन्हे मेरा यह व्यवहार अच्छा नही लगा था। जिद करता हुआ पापा, बुरा माताजीको भी लग रहा था, पर जीजीकी ओर देखकर वे एकदम उठी, पापाकी वॉह पकडकर मुझे एक ओर धक्का दे दिया। "मानता ही नही है।" पापाको उन्होने गोदमे उठा लिया—"भैया जिद नही करते।"

मुट्ठी बनाकर ऑखोको मलते हुए उसने सिसक-सिसककर मूर्तिकी ओर एक हाथ वढाकर कहा—"अम्मा, वो लेगे।"

"अच्छा ले।" माताजी उसे उठाये-उठाये मेटलपीसके पास गई और वहाँसे गेरुए रगकी चमकदार चीनीकी बनी वह मूर्ति उसे दे दी। उसने दोनो हाथोसे कसकर पकड़ लिया।

मै भुनभुनाया, "उसका क्या है, वह तो जरा-सी देरमे तोड देगा। ग्यारह रुपयेकी एक मूर्ति लाया हूँ—सो भी अव मिलती नही है—ऐसी सुन्दर और गठी हुई।"

"हॉ-हॉ नही तोडेगा।" माताजीने कहा—"हम दे देगे पैसे, दूसरी ले आना।" फिर उन्होने पापाको जीजीके पास वैठा दिया फर्शपर ही। जीजीने उसे समझाया—"हॉ भैया, तोडियो नही।"

"अव मिली जाती है दूसरी!" मै मन-ही-मन दॉत पीसकर रह गया। चुप रह गया यह सोचकर कि सुधीन्द्र भाई न जाने क्या सोचेगे उनकी वात सुनते-सुनते ऐसा वखेडा मचा दिया। उसकी ओर एकाध बार देखकर उनकी वातके प्रति उत्सुकता दिखाई—"हॉ, फिर क्या हुआ ?" पापा मूर्तिको फर्शपर रखकर खेल रहा था—कभी इधरसे झॉककर देखता, कभी उधरसे।

सुधीन्द्र भाई वडी विचित्र-सी दृष्टिसे यह सव देख रहे थे। हो सकता है उन्हे वुरा न लग रहा हो, पर उन्हे विशेप अच्छा भी न लग रहा था—

मैंने तत्काल अनुभव किया। इसीलिए ऐसा भाव दिखाया जैसे कुछ हुआ ही नही—हमने अधिक-से-अधिक अपना ध्यान उनकी ओर केन्द्रित कर दिया।

"हाँ तो दूसरे दिन जब मै गया तो चाचीजी बडी दुखी-सी आई—'तुम्ही बताओ सुधीन्द्र, मैं क्या करूँ, उसे लाख समझाया, मैंने समझाया, तुम्हारे वकील साहबने, लालाजीने, लेकिन वह तो एक ही रट लगाये है—मै तो पढूंगी—मै तो पढूंगी। लडका कहता है कि तू जिन्दगी-भर पढेगी तो मै जिन्दगी-भर पढाऊँगा, अपना घर-बार सब बेचकर पढाऊँगा। जो तेरी इच्छा हो सो कर पर वह मानती ही नही है।' 'कहाँ है ?' मैंने पूछा। बताया, 'भीतर पडी है पलगपर, न खाती है, न नहाती है। बस रोये जा रही है, अब हमारी तबियत तो इससे बडी हलकान होती है। इतनी बडी हो गई आजतक नही रोई और अब तुम्ही समझाओ।' मैंने पूछा, 'चाचाजी गये ?' उन्होने जिस ढगसे हाँ कहा मै कुछ-कुछ समझ गया। कुछ नही कहा। चुप भीतर गया। कमरेमे पलगपर वह चुपचाप औधी पडी थी—रह-रहकर उसका सारा शरीर काँप उठता था। मै कुछ देर चुप रहा, फिर पुकारा—'नलिनी, नलिनी।' उसने कुछ नहीं कहा। मैं उसके पास ही पलगपर बैठ गया। दोनो कन्धे पकडकर उसे सीधा किया—देखा वह रो रही थी। उसके खिले गुलाबसे चेहरेको जैसे पाला मार गया था, सारा मुँह उसका लाल हो गया था, और आँखे बीरबहूटीके सुर्ख रगकी तरह जल रही थी। उस समय एक क्षणको भाभीजी, सच मुझे ऐसा लगा कि इस दहकते चेहरेके लिए मै क्या न कर दूं। किस आसमानके नीले और मनहूस पर्दोको चीर दूँ जो उसपर अपनी काली छाया डाले है और कौन-सा पहाड है जिसे उठाकर फेक दूँ, जो इसका रास्ता रोके हुए है। उस समय मुझे अपनी बाहोमे वज्र जैसी शक्ति लहरे लेती अनुभव हुई। मैंने उसका सिर लेकर अपनी गोदमे रख लिया—बाल उसके चेहरेपर फैल आये थे उन्हे एक हाथसे इधर-उधर कर दिया। बडे दुखी,

स्वरमे कहा—'नलिनी, ऐसे क्यो रो रही हो?' उसका रोना बन्द हो गया था, केवल कभी-कभी एक हिचकीसे उसका सारा शरीर सूखे पत्तेकी लडखडाहटकी भाँति काँप उठता था। मेरी समझमे नही आता था मै क्या कहकर उसे सान्त्वना दूँ। फिर कहा—'नलिनी, रोओ मत।' लेकिन नलिनीकी इतनी देरसे सचित रुलाई फिर फूट पडी और वह फिर बुरी तरह रो उठी। मेरा कठ स्वय भीग गया था और आँखोमे आँसू बडी मुश्किलसे रुक पा रहे थे। फिर भी मैने उसे समझाया—'नलिनी, जो हो गया सो हो गया। वह तुम्हे विश्वास दिलाता है कि पढने इत्यादिकी पूरी सुविधा देगा। क्यो व्यर्थ रो-रोकर अपना स्वास्थ्य खराव करती हो।' लेकिन जैसे वह कुछ सुन ही नही रही थी। उसे तो इस समय जैसे रुलाईका दौरा आ गया था—वस रोये जा रही थी। भाभीजी, मै ठीक वताता हूँ उस दिन तीन घटे मेरी गोदमे पडी-पडी वह काँटोपर पडी मछलीकी तरह तडफडाती रही। उस दिन मै भी रोया। लेकिन उस दिनके वादसे उसके शरीरकी स्फूर्ति, उसके चेहरेकी उत्फुल्लता, उसकी भोली आँखोका उल्लास जैसे किसीने मन्त्रके जोरसे खीचकर फेंक दिये और वह एक साधारण ककाल मात्र थी—निस्तेज और उदास। किसी ओर देखती तो वस देखती रहती।

"और पिछले साल उसका विवाह हो गया। जिन्दगीमे शायद दूसरी बार वह जी खोलकर रोई। उस दिन उसने मुझसे कहा—'वस भाई साहव, अव नही रोऊँगी, क्योंकि जो चीज मेरे पास असाधारण थी, जिसका मुझे गर्व था ओर जिससे मुझे इतना मोह था—अव सदाके लिए उसकी चाह छोड दी है। वस अव मै एक साधारण लडकी हू—दुर्वल और कमजोर।"

वह सुसराल चली गई। थोडे दिन वाद आई। जव मैने फाइनलकी परीक्षा दी तभी उसने वी० ए०की परीक्षा दी—जैसे विल्कुल निरुत्साहित और निर्लिप्त होकर। आपको आश्चर्य होगा, तो भी वी० ए०मे उसने

टॉप किया। विभिन्न पत्रोमे जब उसके चित्र छपे, और उसने देखे तो मुझे लगा उसका वह उन्मुक्त उल्लास फिर उसे कुछ समयको मिल गया है। वडे प्रसन्न होकर उसने कहा—'भाई साहब, चाहे कोई कितना ही विरोध क्यो न करे, मै तो खूब पढूँगी।' पर तभी फिर अचानक कुछ क्षणको उदास हो गई। उन दिनो उसने सगीतका अभ्यास खूब बढा लिया था। रोज मुझे कुछ-न-कुछ सुनाती—उन दिनो वह वडी प्रसन्न रही। ओफ, कितना सुन्दर वह गाती थी। आजतक मै निश्चय नही कर पाया कि उसकी प्रतिभा सगीतमे अधिक अभिव्यक्त होती थी या लेखनमे। उन दिनो उसने कुछ सुन्दर निबन्ध और कहानियाँ लिखी। छुट्टियो भर इस बातपर वहस होती रही कि वह एम० ए० कहाँ 'जॉइन' करे। सुसराल-वालोंके पत्र आते कि वनारस ही सवसे अधिक ठीक रहेगा, और वह कहती कि मै तो यही पढूँगी। एक दिन वह महाशय स्वय आ धमके लेनेके लिए। इस स्वभावका मै पहिले नही समझता था उन्हे। वे आकर हठ पड गये कि लेकर जाऊँगा तो अभी नही तो आज अपनी लडकीको रखिए, फिर मेरे यहाँ भेजनेकी ज़रूरत नही है। हम लोगोने लाख तरह समझाया कि वह बी० ए०मे ऐसी अच्छी तरह पास हुई है और उसकी ऐसी उत्कट लालसा है कि आगे पढे तो क्यो न पढने दिया जाय। वे बोले, पढनेका इतजाम क्या वहाँ नही है। वनारस यूनिवर्सिटीमे वह वडे आरामसे पढ़ सकती है। खैर, वे महाशय उसे लेकर ही टले, वस, वही मेरी और उसकी अन्तिम भेट थी। एम० ए० वह जॉइन नही कर सकी। लिखा, 'यहाँसे आकर इनकी तवियत खराब हो गई है। मै रात-रातभर जागकर भग-वान्से मनाती हूँ, कि ये ठीक हो जाये तो कॉलेज 'जॉइन' करूँ—एडमी-शनकी तारीखे निकली जा रही हैं।' लेकिन वह सज्जन तो शायद प्रण करके ही बीमार हुए थे कि दो महीनेसे पहिले ठीक नही होगे। सो वह एडमीशन ले ही नही पाई। उसने लिखा, 'भाई साहव, कभी-कभी तो इच्छा होती है पडा रहने दूँ बीमार और जाने लगूँ पढने। पर सोचती

हूँ ये लोग मुझे खा जायेगी।' इसके वाद और भी, समय-समयपर पत्र आते रहे, उन सवमे जो कुछ लिखा था, उसका तात्पर्य था, 'भाई साहव, मै क्या करूँ, यह मेरी समझमे नही आता। यहाँ कोई काम मुझे करनेको नही है, दिन-रात यह वात जोककी तरह मेरा खून सुखाये देती है कि जिस प्रतिभाकी आप यो तारीफ करते नही अघाते थे, जिस वुद्धिपर मुझे गर्व था, जिस सौन्दर्यसे मेरी सहेलियाँ ईर्ष्या करती थी, मेरे जिस सगीतपर वावूजी झूम आते थे, जिस शैलीपर लोग दाँतो तले उँगली दवाते थे, क्या वह सिर्फ इसलिए है कि निरर्गल और व्यर्थकी प्रेमकी वातोमे भुला दी जाय? वे समझते है कि अधिक-से-अधिक प्रेम-प्रदर्शनसे वे मुझे प्रसन्न कर रहे है, दिन-रात, तुम परी हो, तुम अप्सरा हो, तुम यह हो, तुम वह हो और मै तुमपर भौरे, परवाने और पपीहेकी तरह मरता हूँ। सच कहती हूँ भाई साहव, इन वातोमे मेरा मन नही लगता। हाँ मै सुन्दर हूँ—तुम मरते हो, फिर? लेकिन वे है कि दफ्तर जायेगे—जो घरसे एक मील है—तो चार खर्रे भरकर प्रेमपत्र लिख भेजेगे, जैसे न जाने कितने वर्षोके वियोगमे जल रहे है। उसमे सैकडो सिनेमाके गीत लिखे होते है, तकदीर कोसी गई होती है, दुनियाको लानत दी जाती है कि भाग्यका खेल है, दुनियाने हमे यो अलग कर दिया है, वह हमारा मिलन यो नही सह सकती। पता नही वह दुनिया कहाँ रहती है? अव आप ही वताइये इन मूर्खतापूर्ण वातोसे क्या फायदा? कोई कहाँतक अपनेको इन वेवकूफियोमे उलझाये रखे।' और भाभी, नलिनीका अन्तिम पत्र तो वडा ही करुणापूर्ण है। लिखा है, 'मेरे चारो ओर भीषण अन्धकारकी एक अभेद्य चादर आकर खडी हो गई है, भाई साहव, मै तव कितनी रोई-चीखी थी कि मुझे इस अन्धकारके गर्तमें मत धकेलो, मै वहाँ मर जाऊँगी! इस अन्धकारके खूनी पजोने मेरी अभिलाषाओ और उच्चाकाक्षाओकी गर्दनें मरोड दी है, और अव मै इतनी अशक्त हो गई हूँ कि छटपटा भी नहीं सकती। खाने-पीने और प्रेमकी इन झूठी-सच्ची वातोके वाद वचे हुए समयमे

कभी शॉपिंग करने, घूमने या सिनेमा जाने या दिन-भर औरतोकी इस-उसकी बुराई-भलाई करनेवाली बातोमे अपनी जिन्दगीको बाँध देनेमे मै अपने आपको बिल्कुल असमर्थ पा रही हूँ। इन दिनो यह मानसिक भर्त्सना मुझे खाये जा रही है। भाई साहब, मै क्या करूँ ? मै मानती हूँ, हजारो लडकियोको यही चरम और परम सुख है, पतिका अन्धाधुन्ध प्यार, सोने और चाँदीसे भरा घरबार, और निश्चिन्त दिन। लेकिन इतने दिन मैने जो भी पढा, जो कुछ भी सीखा, जो आज भी मै समझती हूँ, लाखो लडकियोसे अच्छा था, क्या केवल इसीलिए था कि यहाँ आकर सड जाय ? यहाँ करने बैठूँ भी तो ज्यादा-से-ज्यादा खाना बना लूँ, चौका-बर्तन कर लूँ। हो सकता है इन बातोमे मेरा सारा समय लग जाया करे—लेकिन बस ? इसी लिए मैने उस देव-दुर्लभ प्रतिभाको सजोया था ? भाई साहब, ये शादी करनेवाले लडकियोके यहाँ जाकर पूछते है—तुम्हारी लडकी गाना-बजाना जानती है, कसीदाकारी जानती है, मिठाई बनाना जानती है ?—उस समय उनकी इच्छा होती है, कि ससार-का कोई काम क्यो बच जाय जिसे यह लडकी न जानती हो ? लेकिन कोई इनसे पूछे, विवाहके फेरोके बाद सिवा चौके-चूल्हेके कौनसी कला-कारी लडकीके काम आती है। कोई मुझसे पूछे, मेरी सारी किताबोको कीडे खाये जा रहे है। पढनेके प्रति किसीमे रुचि नही है। यो शौक सभीको है कि लडकीके सामने एजूकेटेड शब्द लगा सके। वैसे सभीको पाउडर, लिपस्टिक और बुनाइयोकी बाते करनी उससे अधिक आवश्यक लगती है। बुनाई इसलिए नही कि कला है, बल्कि इसलिए कि फैशन है, इसीलिए कोई नई बुनाई देखी सब उसकी नकल करेगी, नया ब्लाउज, साडी देखी, वैसी ही लायेगी—बनवायेगी। नये कटका गहना देखा, खटसे पहला टूट रहा है नया बन रहा है, रोज चीजे टूटती है, रोज बनती है। किसी-किसीको तो शायद एक बार भी नही पहना जाता, और टूटकर नया बन जाता है, क्योकि वह पहिलेसे अधिक सुन्दर है। और यह

क्रम कभी खतम नही होता। मेरे वायलिन और सितारमे मनो धूल भर गई है। महादेवी और मीराके गीत मै यहाँ गाकर सुनाऊँ तो सब उल्लुओ-की तरह मेरा मुँह देखे। वात-वातमे इनकी इज्जतका ध्यान, वात-वातमे स्त्री होनेकी घोषणा। यह ऊँचे घरोकी बाते है। नीचे घरोको भी देखती हूँ, जहाँ चूल्हे-चौकेसे ही फुर्सत नही मिलती। सच भाई साहव, आज हृदयमे बडी प्रचड शक्तिसे यह भाव उठ रहा है कि काश, मै एक साधा-रण लडकी होती—मूर्ख और भेड, जिसके बचपनकी सारी तैयारियाँ, शिक्षा-दीक्षा केवल विवाहके लिए होती है, और विवाह होनेके वाद जैसे इन सारे झझटोसे छुटकारा मिलता है। इस सवके लिए शायद सवसे अधिक दोषी आप है। आपने ही मेरी महत्वाकाक्षाओको उभाड कर इतना वढा दिया था कि तू यो करेगी, यो करेगी! आपने ही मेरे दिमागमे भर दिया था कि मै असाधारण प्रतिभाशालिनी हूँ, और आपने ही अपने कन्धोपर चढाकर इतना ऊँचा उठा दिया था कि आज जब ये लोग मुझे फिर उस कीचडमे घसीट रहे है, तो टूट जाना चाहती हूँ, विखर जाना चाहती हूँ, मर जाना चाहती हूँ, पर नीचे नही आ पाती। अब वताइये मैं क्या करूँ? कैसे मर जाऊँ? मै कवतक यो छटपटाती रहूँ? भाई साहव, मुझे कोई रास्ता वताइये, वताइये न! केवल विवाह करके यो इन चारदीवारियोमे सड़ जानेके लिए शायद मै नही जनमी थी, मुझे और कुछ करना था—मुझे कुछ ओर करना था!'

"खैर भाभीजी, यह उसका अन्तिम पत्र था, फिर तो उसका तार ही आया।"

यह सब बोलनेमे सुधीन्द्र भाईका स्वर न जाने कितनी वार गीला हुआ, कितनी वार भर्राया, पर इस वार तो जैसे वह वोल ही नही पाये। गलेमे कफ-सा अटक गया, उसे खाँसकर साफ किया फिर थोडी देर चुप रहे। पापा वुद्ध भगवान्‌की मूर्तिको धीरे-धीरे पृथ्वीपर ठोक-ठोककर खेल रहा था, एक वार हमने उस ओर देखा, पर जैसे भाव-शून्य होकर। सब उत्सुकतासे सुधीन्द्र भाईकी ओर ही देख रहे थे।

"मैं जब वहाँ गया तो पता चला कि वह अस्पतालमें है", संयत होकर सुधीन्द्र भाईने कहना आरम्भ किया।

"अस्पताल?" प्राय सभी चौंके।

"हाँ।" उन्होंने कहा, "उसके सारे घरवाले स्तब्धसे थे। अस्पताल गया—देखा उसका सारा शरीर फफोलोंसे भरा था या जलकर काला हो गया था। वह मर चुकी थी, उसने मिट्टीका तेल छिडककर आग लगा ली थी।"

"है!" जैसे किसीने बडी भारी काँसेके घंटेमें समस्त शक्तिसे हथौडा दे मारा—सारा वातावरण झनझनाकर थर्रा उठा।

उसी समय पापाने बुद्ध भगवान्‌की मूर्तिको जोरसे पृथ्वीपर पटक दिया। खन-खन करते हुए सुन्दर खिलौनेके चमकदार टुकडे इधर-उधर बिखर गये

हम सब मन्त्र-जडित थे।

घंटेकी झनझनाहट गूँज बनकर डूबती जा रही थी।
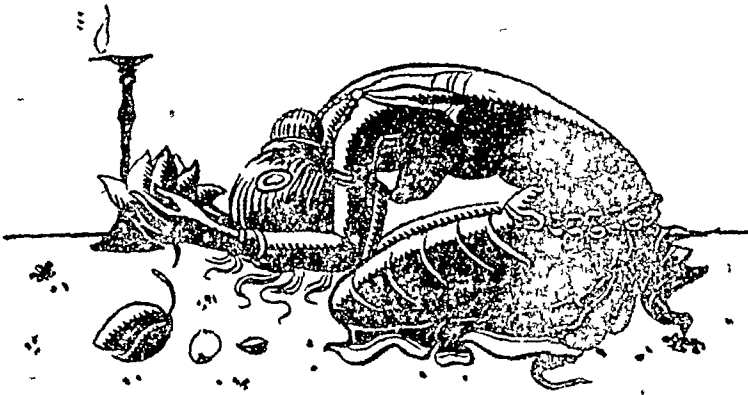
कुतिया

बडे भैया न जाने कहाँसे उसे उठा लाये थे। बड़ा सुन्दर पिल्ला था—मोटा-सा। गदबदे शरीरका, बडे-बडे बाल, सुनहला रंग। अजीब आकर्षण उसमे था कि देखो तो लेनेकी इच्छा होती और आँखे तृप्त हो जाती। अपने छोटे-छोटे पैरोसे जब वह इधर-उधर चलता तो बच्चे कुतूहलसे उसे देखते। और एक जब आवेगमे उसे उठाकर छातीसे चिपका लेता तो दूसरा खीचा-तानी करता, झगडता। वह कुतिया थी। घर-भरका एक खिलौना। जो आता उसकी तारीफ करता। दिन-भर उसे कुछ-न-कुछ खिलाया-पिलाया जाता और उसका पेट फटनेकी सीमातक फूला-सा लगता। कभी कोई बच्चा अकेलेमे उससे बात करता। कभी बच्चोकी तरह थपकी देकर उसे सुलाया जाता—मै चाहता कि मै जब पढ़ूँ-लिखूँ तो वह मेरी मेज या गोदीमे बैठी रहे।

और वह पिल्ला कुछ बडा हुआ।

बाल उसके कम होने लगे और शरीरकी सुडौल गठनके स्थानपर एक पतली लम्बूतरी देशी कुतियाकी सूरत उसमेसे बाहर निकलने लगी। दिन-भर गोद या हाथोमे रहनेके कारण पाँव उसके टेढे (पगे) हो गये थे, और वह निहायत सुस्त आलसी थी—दिनभर मुँह झुकाये पडी रहती, क्योकि खाना उसे बिना श्रमके मिल जाता था। बच्चोका प्यार कम हो गया।

कुछ और दिन बीतनेपर हमने देखा कुतिया साधारण बाजारू कुतियो जैसी हो गई है, उसकी आँखोसे कीचडदार पानी बहता है, जहाँ मक्खियाँ भन-भनाया करती है। कानोमे कलीले भरे रहते है। अब उसके खाज भी होनी शुरु हो गई थी।

कुतिया

उसके प्रति सारा स्नेह और प्यार गायब हो चुका था और बच्चोको निषेध कर दिया गया कि वे उसे जरा भी न छुएँ।

खाज बढी और सारे शरीरमे फैल गई।

बच्चोको न लग जाय या इसका कोई और प्रभाव न पडे इसलिए हमे विवश होकर इक्केमे बाँधकर उसे शहरके एक दूसरे हिस्सेमे छोड आना पडा कि वह उधर आ ही न सके।

बहुत दिन बीत गये।

आज अचानक मुझे उधरसे गुजरनेका मौका मिला। एक कुतिया आकर मेरे पैरोसे लिपट गई, बार-बार मेरे पैरोको सूँघती और दुहरी होकर पूँछ हिलाते हुए कूँ-कूँ करती। मैंने पहिचाना वही कुतिया थी। अब वह बहुत बडी हो गई थी और शायद गर्भिणी थी। खाज उसकी अब भी वैसी ही थी। घृणासे मैंने बचना चाहा और बेतसे परे हटाकर चलने लगा। लेकिन वह नही मानी, लिपटी-लिपटी चलने लगी। मैंने डॉटा, मारनेके लिए बेत भी हिलाया पर वह गई नही। हारकर दो तीन बेत उसकी पीठपर जड दिये, क्योकि मुझे अब उससे तनिक भी मोह नहीं रह गया था।

टॉगोके बीचमे पूंछ दबाये "क्योऽऽक्योऽऽ" चीखती वह एक तरफ हट गई और सडकके किनारे बैठी एक स्त्रीके पास खडी होकर अपलक मुझे देखने लगी। मुझे लगा उसकी आँखोमे पत्थरको भी पिघला देनेवाली शक्ति है। वह मूक पशु! दिल भर आया और खडा उसे देखता रहा! वह कभी हमारे यहाँ रही थी और प्यारकी भाजन थी। काश! वह बोल पाती।

स्त्रीकी पीठ मेरी ओर थी, शायद वह कोई भिखारिन थी लेकिन युवती थी—कुतियाने उसे सूँघा और मेरी ओर देखती पूँछ हिलाती रही। बडे प्यारसे स्त्रीने कुतियाके ऊपर हाथ फेरा। हाथका रग गोरा था। हरी चूडियाँ। सडक पार सामने दूकानपर बैठे लालाको सबोधन करके

उसने कडककर रोती हुई आवाजमे कहा—"जाडे-धूप-लूमे मैं यही सडकर मर जाऊँगी—पर जाऊँगी नही। ईश्वर तुझे देखेगा तेरे शरीरमें कीडे पडेगे। पहिले मीठी-मीठी बाते करके घरसे—माँ-बापके यहाँसे भगा लाया। आठ दस साल मौज उडाई और अब छोड दिया, जवान थी तो तेरे यहाँ रही—बता अब मैं कहाँ जाऊँ। मेरा घरबार सब छुडा दिया। कोठा लेके बैठूँगी तो भी तेरे सामने ही बैठूँगी। बडा सेठ बना है .. नास जायेगा नास . ।"

खजैली कुतियाकी पीठपर मुँह रखकर वह फूट-फूटकर रो पडी। सिरकी धूल भरी उलझी लटे कुतियाकी पीठपर बिखर गई—शायद वे कभी सुन्दर रही हो .

नास्तिक

"पुजारीजी, चलेगे नही, आरतीका समय हो गया है।" नीराने शलवारके पायचोंको घुटनो तक उठा लिया, फिर सीढीपर खडी होकर एक पैरसे पानी लेकर दूसरेको रगडने लगी। लहरे लेती हुई गगा बही जा रही है, सीढियोको चूमती-सी। नीराकी गोरी पिडलियोपर अस्तोन्मुख सूर्यकी स्वर्णाभ रश्मियाँ खेल रही है।

"चलो तुम।" मैने अन्यमनस्कसे स्वरमे कहा। सूरजका पीलापन लहरोमे झूल रहा है—सामने लम्बा पुल है, इठलाता-सा, उसके पीछे ऊँचे पहाड—दूर तक धुँधले। हवा बन्द सी है। आकाश पर लौटे हुए दो चार पक्षी चहचहा उठते है—मेरे पीछे कोलाहल बढ रहा है—हरकी पैडीका पुण्य लूटने मुमुक्षुओ और साधुओकी टोलियाँ आ रही है—गगा जीकी आरतीका समय है। गगा तरल पारेकी तरह काँपती है। सीढियो पर बैठा हुआ मै कुछ भावुक-सा हो उठा हूँ। मेरे पैर लहरोमें—शीतसे खेलते है, विचार उठते है—जैसे लहरे ।

"चलो ना।" और यह नीरा मुँह हाथ धोकर दुपट्टेसे मुँह पोछती हुई मेरे पास आकर खडी हो गई है।

'क्या सोचते हो तुम दो तीन दिनसे?' और नीरा मेरे कन्धेपर हाथ रखकर चुपकेसे मेरे बगलमे सटकर बैठ गई, धीरेसे अपने पजे उसने पानीमे डाल दिये है। मेरे कन्धेमे सिर टिकाकर वह स्वय भी कुछ सोचने लगी है। यह नारी मुझसे सटकर बैठी हुई है, पीछे अगणित आँखे शायद कौतूहलपूर्ण उत्सुकतासे मुझे घूर रही होगी—मेरा शरीर रोमाचित होना चाहिये, एक मधुर कम्पनसे मेरी शिराएँ तने तारोकी भाँति काँप लरज उठनी चाहिये, पर नही मेरे अन्दर कुछ नही हो रहा—हृदयमें

भर दुदम्य प्यारका ज्वार फूटकर भर रहा है—दुर्निवार स्नेहकी धारा। पर लगता है, हरद्वारके महान् कोलाहलपूर्ण घाट पर न बैठकर मैं कही एकान्तमे बैठा हूँ—अखड निस्तब्धताका राज्य अपनी समस्त पूर्णतासे प्रसारित हो उठा है। अन्धकार शनै शनै आकाशके कोनोसे उतरता है।

यह नीरा ? न जाने क्यो मुझे इससे इतना स्नेह हो उठा है,—इन तीन दिनोमे। जैसे मैं इससे बहुत दिनोसे परिचित हूँ और केवल मेरे आश्रयके लिए—मुझे इस सत्यका ज्ञान करनेके लिए ही वह अपनी आयुके वर्षपर वर्ष फाँदती चली आ रही है।

नीरा कहती है मैं दो-तीन दिनसे सोचने बहुत लगा हूँ, सोचना ? हाँ मै सोचता हूँ, क्योकि नीराने मुझे झटका दिया है, इतना सबल कि मै अपनेको सँभाल नही पा रहा हूँ। मेरी सारी मान्यताएँ, आस्थाएँ काँपती है, डगमगाती है! नीराने मुझे प्रेरणा दी है कि मै सोचूँ—मैं सोचूँगा, खूब सोचूँगा, मुझे सोचने दो।

और क्यो न सोचूँ, आजतक जड पत्थरकी भाँति जीवनको घसीटता लाया हूँ—सोच नही पाया कहाँ, कैसे, क्यो ? अब जब विचारोमे उत्तेजना हो उठी है, मानसमे प्रबल आलोडन हो उठा है तो मुझे विचार कर लेने दो। दिनभर कुछ भी करनेको मेरे पास नही रहता, केवल खिडकीसे पाँव अडाकर बैठ जाता हूँ, घाटको देखता हूँ, या आनेवाले आदमियोको, स्त्रियोकी सूरते, अद्भुत व्यापार मुझे यहाँ दिखाई देते है। खिडकीके सामने ही वह द्वीप-सा है जिसे हरकी पैडीसे दो चौडे पुल मिलाते है—उसपर घाट बने है, बीचमे क्लॉक टावर है। हरकी पैडी और इस द्वीपके बीचमे केवल एक तालाब-सा रह गया है। यही बैठा मैं बस देखा करता हूँ, श्रद्धा-विह्वल भक्ति-गद्-गद यात्री किस प्रकार दूरसे गगाजीको प्रणाम करते है, आदर और सकोचके साथ अपना पैर पानीमे डालते है, और फिर किस प्रकार सँभल-सँभलकर वह नहाते है। जैसे यह गगाजल

नही-दूध हो—गुलाव-जल हो। और फिर कैसी आतुर डुवकियाँ वे लोग लगाते है जैसे एक-एक डुवकीमे समस्त जीवनकी कमाई वमूल हो रही हो—उस पानीको कोई उनसे छीने ले जा रहा हो—शायद फिर यह मिल न सकेगा, कभी नही। "पुजारीजी, मुझे इन वातोपर विश्वास नही होता।" एक दिन नीराने वडे दृढ, आत्मविश्वासयुक्त स्वरमे कहा था। किंचित् भी झिझक उसकी वाणीमे नही थी कि कैसी वात वह गगाके पुजारीसे कह रही है। अवसादकी कालिमा उसकी मुद्राओमे साकार हो गई थी, मुझे लगा वडी कठिनाईसे वह अपने आँसू रोक पा रही है—यह भूखी नारी, स्नेह प्यार और वात्सल्यकी भूखी।

"चलो पुजारीजी। कोई बुलाने आता होगा।" सोच्छ्वास नीराने जैसे मेरे कानमे कहा—कुछ क्षणोमे यह प्रगाढ अन्धकार धरतीपर उतर आयेगा और यह नाम रूपात्मक जगत् पहेली बना-सा मनुष्यके भाग्यपर हँसेगा—वुद्धिको चुनौती देगा।

विश्वास ?—जी, हाँ मेरा विश्वास भी इन वातोमे कभी प्रवद्ध नही हो पाया। जव मै देखता हूँ आँखोके ये अन्धे कभी डरते-काँपते-से अकेले या जोडेसे डुवकी मारते होते है, या हरे दोनेमे फूल-पत्ती लिये वे श्रद्धाजलि चढाते है, तो न जाने क्यो मुझे इनकी वज्रमूर्खतापर हँसी आती है। तीर्थ-पुरोहित और पडे, जव इन्हे पानीमे खडा करके मरणासन्न वछियाकी पूँछ इनके हाथोमे पकडाकर उन्हे विश्वास दिलाते हैं कि यह उन्हे वैतरणीके पार इस प्रकार डाल देगी, जैसे यह गाय नही मगर हो! फलोका दोना हाथमे थमाकर जव वे प्रत्येक साँसमे 'समर्पयामि नम'को 'सवा रुपयामी नम' कहकर मोक्षकामीसे कई सवा रुपये झटक लेते है, तो जैसे स्वर्गके फाटककी छोटी खिडकी व्यक्तिगत रूपसे इनके लिए खुल जाती हो! तो क्या वहाँ भी पगडी चलती है? गगाके किनारे हवन होते हैं, कभी-कभी मैं इनके ऊपर सोचने लगता हूँ यह रुपयेकी, धनकी, समयकी वर्वादी—केवल इसलिए कि भविष्यमे, परलोकमे सुख मिलेगा—

स्वर्ग। ये बडे-बडे सेठ, नेता, अफसर—सब यहाँ यही रिश्वत देने आते है, कि यहाँकी भाँति परलोकमे भी उनके लिए अच्छा-से-अच्छा स्थान रिजर्व हो। हमारे सामने जो कुछ है उससे भी अधिक अच्छा, सुन्दर स्थान पानेकी वासना—तृष्णा! हे भगवन, कैसी माया है यह सब? क्या इनका यह व्यसन—रिश्वत देने और लेनेका—कभी इस जन्ममे छूट पाएगा?

मन्दिरकी खिड़कीमे बैठा मै देखता रहता हूँ, बडे-बडे छातोका तम्बू-सा डाले हुए पण्डित किस प्रकार चन्दन लगाते है, वहाँ पर बैठनेवालोसे चलते समय पैसे ले लेते है, किराया, उस पवित्र स्थानपर बैठनेका! ये लोग मालिक है न, इन धर्म-स्थानोके। खैर, इतनी ही है कि किराया लेते समय ये लोग लडते नही। मथुराके तगडे चौबे तो मैने देखा, डडा लेकर बाँह चढाकर चढ आते है—"दो रुपया माताजी, तुम्हे देने ही होगे", और कभी खुशामदसे कहते है—'भक्त, दो-चार सेर लड्डू तो हम बिना साँस लिये खा जाएँ, पाँच सेर खिलाके भी देख लो, जो जरा भी रुके!' किन्तु ये लोग केवल अठन्नियो पर सन्तोष कर लेते है और खाली समयमे बैठे ताकते रहते है, कौन किस प्रकार नहाता है! और स्त्रियाँ जब घाटपर बैठी नहा रही या डुबकियाँ लगा रही होती है तो वासनाकी ऐसी लाल लपटोकी झलक मैने इनकी आँखोमे देखी है, कि मेरा मस्तिष्क भन्ना गया है। और यही क्यो, यहाँ आनेवाला प्रत्येक पुरुष, आँख बचाकर या निर्लज्ज होकर यौवनकी इस उद्दाम नग्न गगाको ही लालायित दृष्टिसे देखता है। कभी-कभी मै सहानुभूतिपूर्वक सोचता हूँ, ये लोग क्यो देखते है, स्त्रियोका शरीर आखिर है क्या? और मैने स्वय उन स्त्रियोकी ओर देखा है। वे महीन कपडा पहिने हुए उतरती है, हिचकतीसी, ठडे पानीसे सिहरती-सी, फिर ऐसी डुबकी लगाती है—ऐसी डुबकी लगाती है कि बस। और उस समय महीन कपडा! जैसे पारदर्शी शीशा बन जाता है, एक-एक रोआँ मस्सा स्पष्ट देख लो—कभी-

कभी भ्रम हो जाता है क्या वे दिगम्बर वेशमे तो नही नहा रही—घृणा, ग्लानि, क्षोभ और वितृष्णाकी एक ऐसी उबकाई-मी उठती है, फिर उधर देखा नही जाता! क्या धर्मका यही उद्देश्य है! स्त्रियाँ जान-बूझकर इसलिए आती है—छि छि और घृणाकी एक फुरहरी-सी मेरे सारे तनको झकझोर गई है!

"पुजारीजी, अँधेरा घना हो गया है, भीड बढ रही है।" नीराने मेरे कन्धेको सहसा चौककर झकझोर दिया है।

इस अँधेरे ओर आरतीकी ओर अवज्ञाका भाव दिखाकर मै केवल थोडी-सी गर्दन घुमाकर उस ओर देखता हूँ। अरे, नीराकी आँखोमे आँसू है! और मेरा हृदय मसलकर रह गया है।

यह नीरा? कितनी व्यथा अपने अन्दर यह छिपाये हुए है, शायद उसका एक कण भी मुझे भस्मीभूत कर देता। पर नीरा, तू उन दहकते अगारोको हृदयमे समेटे, जब मुखपर एक करुण मुस्कानकी रेखा खीचती है, तो मुझे लगता है जैसे उत्तप्त सलाखसे कोई मेरे मर्म-स्थलको छेद रहा है। कैसे यह अनजान नारी अप्रत्याशित रूपसे मेरे जीवनसे उलझ गई कि मुझे लगता है, मै सब कुछ जानता हूँ—इसके अणु-अणुसे मै परिचित हूँ। और इसने विना जाने-बूझे अपने सारे विश्वासको मेरे ऊपर क्यो आधारित कर दिया है! क्या यह नही जानती है कि मै विश्वासघात भी कर सकता हूँ। ओ नारी! मै पुजारी हूँ, धर्मका ठेकेदार हूँ, धर्म मेरा कवच है, मै सब कुछ कर सकता हूँ—सब कुछ करते देखता हूँ, सब कुछ किया है! फिर यह तेरा भोला विश्वास! उस दिन जब मन्दिरमे कोई नही था, यह नीरा न जाने कहाँसे झपटती-सी आकर मन्दिरकी देहलीपर सिर रखकर फूट पडी थी, फिर दोनो हाथोसे मुंह ढाँपे मूर्तिके पास विखर गई।

"माई, पीछे हट जाओ।" मैने कहा; न जाने हृदयमे कैसा-कैसा होने लगा।

वह नही हटी, दोबारा कहनेका मेरा साहस न हो रहा था। वह बिलख-बिलखकर रोती रही। मुझे लगा मेरे अन्दर भी कुछ पिघलकर बहनेको आतुर हो उठा है। यह एक नवीन बात आज क्यों हो रही है। इस अपरिचित नारीका रुदन मुझे विचलित किये देता है ?

"जाओ, माताजी! यहाँ क्यो रो रही हो ?" बडे उच्छ्वसितसे स्वरमे मैने कहा।

थोडी देर पश्चात् उसने मुँह उठाकर मेरी ओर देखा—"कहाँ जाऊँ पुजारीजी, मुझे जगह बताओ !" उसकी आँखोमे लाली और अन्तस्तल तकके सिरेतक घुस जानेवाली दृष्टि थी।

"क्यो, यहाँ कहाँ आई हो ?" मै मन्दिरके जँगलेमे चौखटसे पैर अडाकर बैठा था—"कहाँसे आई हो ?"

वह दृढ हो गई, उठी, और फिर जँगलेके पास फर्शपर आकर ही बैठ गई, गिर पडी, "मेरठ जिलेसे आई हूँ।"

'कहाँ ?' मैने उसकी ओर देखा, वह बिलकुल मेरे पास बैठी थी। "गगाजीकी गोदमे !" दृढ आत्मविश्वाससे उसके ओठ हिले, "पुजारीजी, मेरे भाग्यके तारे गगाकी गोदमे सो गये। अब मै आई हूँ।"

मैने नीचे गर्दन झुकाकर देखा, बीस-बाईस वर्षकी आयु, गोरा ओर सुन्दर मुख, अवसादकी उसके ऊपर अपरिहार्य मुहर। आकर्षक लाल सूजी हुई आँखे, रह-रहकर फडक उठनेवाले ओठ और उस सबके ऊपर एक धूमिल और सरल अभिव्यजना। मेरे अन्दर धूपवत्तीके धुएँकी भाँति बल खाता-सा कुछ उमडने लगा। यह अस्वाभाविक उद्विग्नता आज मुझे क्यो अपने अन्दर अनुभव हो रही है ? ओठको दाँतसे भीचकर सुन्दर घाटसे पार पुल और पर्वतकी ओर देखते हुए मैने कहा—'तुम्हारी कामना पूर्ण होगी माई।' उस समय मै ध्यान नही दे सका कि स्त्रीकी किस कामना-पूर्तिके लिए मै कह रहा हूँ।

उसने विस्मयसे मेरी ओर कुछ देखा, फिर धीरेसे हँस दी, "पुजारीजी, मैं बहुत दुखी हूँ।"

"तुम ? तुम्हे क्या दुख है माँ ?" एकदम चौंककर मैंने कहा, और जब अपनी शुभकामनापर मेरा ध्यान आ गया तो मैं सकुचित हो उठा, शीघ्रतासे हडबडाकर बोला—"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"नीरा", बहुत सक्षिप्त उसने कहा। फिर एकदम वह गम्भीर हो गई।

"यहाँ कहाँ आई हो ?" अन्यमनस्क-सा प्रश्न मैने किया।

"कही नही, घरसे निकाल दिया है—बेघर हूँ!" उसकी वाणी जैसे विह्वल हो गई, फँसे हुए गलेसे बोली—'पुजारीजी, मारकर और पीटकर मुझे घरसे निकाल दिया है।

"क्यो ?" आजतक किसी युवा-स्त्रीसे मैंने ऐसी बाते नही की। इतना मै बोल नही पाता, लजाता हूँ, पर अब न जाने कौन बेझिझक मुझसे सब बाते पुछवाये जा रहा था।

"क्यो ?" बडी गहरी साँस उसने ली,—"क्योकि मैं स्त्री हूँ, धर्मकी चक्कीने मुझे पीस दिया है।" फिर थोडी देरतक वह चुप रही, फिर धीरे-धीरे अन्तरके न जाने किस गह्वरसे उसने बोलना आरम्भ किया—"पन्द्रह वर्षकी आयुमे मेरा विवाह हुआ, न जाने कितनी आकाँक्षाएँ लेकर मैं आई थी, किन्तु दो वर्षतक उचित-अनुचित सब कुछ करनेपर भी मेरे कोई सन्तान न हुई, 'उनकी' माँने गगाकी मानता मनाई, "हे गगामाई ! पुत्र तुझे भेट दूँगी।" ढाई वर्ष फिर बीत गये, और तब कही जाकर एक पुत्र हुआ। तुम्हे क्या बताऊँ पुजारीजी, कैसा चाँदका टुकडा-सा वह था, पर 'माताजी'ने बताया कि गगाजीकी महिमाका वह फल है। मैंने उनकी बातको निर्विवाद स्वीकार कर लिया, पर जब गगाकी भेट चढानेकी बात आई तो मेरी छाती काँप उठी। पर मेरा वहाँ क्या था ? एक बडे पर्वपर हम लोग सब गढमुक्तेश्वर गये। बहुत पूजा-पाठके पश्चात् गगामे कुछ

गहरेमे 'उन्हे' खडा कर दिया, 'उन'की गोदमे मुन्ना था, कैसे सुनहरी बाल, कोमल शरीर। पुजारीजी, गगाका पानी बडा ठडा था, कुछ दूरपर तीर्थ-पुरोहित खडा हो गया, फिर पुरोहितने उनसे मुन्नाको गगामे फेकनेको कहा, मै रोने लगी घाटपर, माताजीने एक घुटना मेरी पीठपर मारा, गालियाँ दी, मुँहमे पल्ला ठूँसे मै बैठी रही। मुन्नाको उन्होने उछालकर फेका, धारपर वह पडा, और अदृश्य हो गया। पुरोहित उधर उत्सुक लपकनेके लिए खडा था कि जैसे ही वह उछले, वह पकड ले! ओह, 'पुजारीजी' वह पल, कितना भयकर, कितना दु सह, कितना लम्बा, था। आँखे मेरी फटी जा रही थी, कि मुन्ना अब उछलता है, अब उछलता है, पर वहाँ कुछ नही हुआ—एक पल, दो पल, तीन पल—कुछ भी नही! मुझे होश नही रहा, एक चीखके साथ मै अचेत हो गई। फुँकारती हुई गगाकी लहरे उन दोनोके बीचसे झपटी जा रही थी। और वह निस्तब्ध निश्चल खडे थे। तब गहरी साँस खीचकर पुरोहित सीधा हुआ, "दुख न करो बाबू, गगाने तुम्हारा पुत्र स्वीकार कर लिया, तुम सौभाग्यवान हो—अब दान-दक्षिणा करो कुछ?" मुझे नही मालूम फिर क्या हुआ। घर आये। भीतर उन लोगोके क्या हो रहा था, वे ही जाने, पर बाहर बडा सन्तोष था, गगाने पुत्र स्वीकार कर लिया है, भगवान् और देगा। उस दिन न जाने कहाँसे आकर विद्रोहकी चिनगारी मेरे भीतर भभक उठी। यह हत्या थी, और जान-बूझकर की गई। एक दुख था जो मेरी सारी नसोमे समाकर रह गया था। मुझे ज्वर भी आया। कुछ दिनो विक्षिप्त-सी भी रही। पर डेढ वर्ष पश्चात् फिर एक पुत्र हुआ। माताजीने बताया कि गगाजीकी मानता वे फिर माने हुए है। मैने स्पष्ट कह दिया चाहे मै मर जाऊँ इस बार कही नही जाऊँगी। बडा बवंडर इसपर घरमे उठा, किन्तु 'उनका' उत्साह इस बार अधिक नही था, इसलिए नही गये, तय हो गया कि मुन्ना जब कुछ बडा हो जायेगा, तो इलाहाबाद, बनारस, गढ-मुक्तेश्वर इत्यादि घूमने चलेगे। और मुन्ना चार वर्षका हो गया। प्रयागमे

कुम्भ था, हम लोग गये। ओफ, कितनी भीड पुजारीजी। हम लोग सव जगह भीडमे घूमे, नहाये भी। एक दिन लौट रहे थे, सहसा मेरा कलेजा 'धक्'से रह गया—मुन्ना कहाँ है ? मैंने 'उनसे' पूछा वे बोले, 'मैंने अम्माजीको उसका हाथ पकडा दिया था। भीडमेसे जव वे बाहर आई तो मैंने दौडकर पूछा, अम्माजी मुन्ना कहाँ है ? मुन्ना ? मैंने तुझे ही तो उँगली पकडा दी थी।' ननदने कहा—'हाँ भाभी, तुमने ही तो हाथ पकड लिया था।' मुझे लगा अम्मा घूम रही है, ननद घूम रही है वे घूम रहे हैं। और 'खट'से जादूके मन्त्रकी भाँति सारा कुम्भ आकाशमे घूमता हुआ उलटा जा लटका, बडी तेजीसे घूमता हुआ ऊपर चढता गया—चढता गया। छोटा होते-होते एक विन्दुसा रह गया और वह विन्दु फिर व्यापक अन्धकार। थोडी देर पश्चात् वह अन्धकार 'फर'से उड गया और मैंने देखा, उनके होठ क्रोधसे काँप रहे है। सारे कुम्भको उन्होने छान मारा, पर मुन्नाका कही पता नही लगा। पहिली बार भी रोकर मैंने ही अशकुन कर दिया था। इसके लिए तुझे कितनी यातनाएँ दी है, कितना मारा है।" और नीरा मेरे दोनो पैरोको वाहोमे बाँधकर सुवक-सुवककर रो पडी।

मै वडी गम्भीरतासे सुनता हुआ सोचने लगा था। वडे स्नेहसे सिर पर हाथ फेरा, पीठपर थपकी दी—"वहन रो मत !" उमडते आसुओको कठमे ही रोककर इतना ही कह पाया।

वह अभागिन नारी। शायद उसे स्नेहका कण भी नही मिल पाया था, और भी फूट-फूटकर रो पडी—'भैया, मै उसे गगाके पूरे किनारोपर ढूँढूँगी—गगोत्रीसे लेकर गगासागर तक।' मैंने उसे धर्मशालामे स्थान दिला दिया है, खाने पीनेकी व्यवस्था कर दी है।

"पुजारीजी, उठोगे नही, देखो रात हो गई है।" नीराने मुझे फिर झकझोरा, मै गहरी साँस लेकर चौंका हूँ—आँखोके आगेसे सारे फिल्मी पटल अदृश्य हो गये है, घना अन्धकार चारो ओर छाया है, गगाकी लहरो-

पर भक्तो द्वारा प्रवाहित दोनोमे घीके दिये बहे जा रहे है—जैसे आकाशमें तारे! पुलके ऊपर घाटके ऊपरकी बिजलियाँ जल उठी है पीछे हरकी पैडीपर असख्य कठोसे निकला कोलाहल समवेत हो गया है। वह आदमी झपटता हुआ इधर ही आ रहा है। क्या मुझे बुलाने आ रहा है? उँह!

"नीरा, मेरा मन आरती करनेको नही करता!" मैंने दृढ किन्तु भावुक स्वरमे कहा। मेरा एक हाथ नीराकी पीठपर था—"यह गगाका साधारण-सा पानी, इसके नामपर इतनी हत्याएँ, इतने जघन्य पाप—अत्याचार—मै पूछता हूँ, बाढ आयेगी तो और नदियोके अतिरिक्त क्या गगा, गाँव घर और मनुष्य बहाना छोड देगी? नही-नही नीरा, मै बहुत दिनोसे देख रहा हूँ, यह मुझसे नही हो सकेगा, नही हो सकेगा।"

"नही भैया, मेरे लिए इतना मत करो, मत कहो! गगा माँ है।" अब उसने अपने दोनो हाथ मेरे गलेमे डाल दिये है और कन्धेपर झूल गई है। शायद रो रही है। ओ भोली नारी यह कैसी श्वास मेरी पसलियोको फाडकर बाहर आ रही है।

× × ×

दूसरे दिन सारे हरद्वारमे चर्चा थी हरद्वारके प्रसिद्ध पुजारी सहसा पागल हो गये। कल आरतीके समय वे कुछ उदास और बहके-से थे। जब आरती जलाकर उन्होने हाथमे ली तो उनके हाथ काँप रहे थे। फिर एकदम उन्होने जोरसे आरतीको गगाकी धारामे फेक दिया और चिल्लाते हुए सीढियोके ऊपर भागे! "मै नास्तिक हूँ", "मै नास्तिक हूँ।"

यथार्थवादी कहानी-लेखक

"मेरी अभीतक केवल पाँच कहानियाँ प्रकाशित हुई है, और मेरी पाँचवी कहानी जिस पत्रिकामे प्रकाशित हुई है उसमे मेरे विषयमे लिखा है ' 'नये युगके सबसे अधिक प्रसिद्ध प्रतिभाशाली यथार्थवादी कहानी लेखक'।" कहकर मैंने गर्वसे अपने मित्रोकी ओर देखा फिर धीरे-धीरे घूँट-घूँट करके चाय पीने लगा।

"तो तुम्हारा हिन्दी साहित्यके विषयमे क्या अनुभव है ?" मेरी बातके प्रति स्वीकृतिका भाव लाकर टोस्ट कुतरते हुए अनन्तने पूछा। यह मेडिकल कालेजका छात्र था।

"अनुभव ? " मैंने दुहराया, गम्भीर हुआ, फिर प्रत्येक शब्दको स्पष्ट कहा "मेरा यह अनुभव है कि हिन्दी साहित्यमे प्रतिभा, मौलिकता और अभिव्यजना-कौशलकी आवश्यकता है। बस आपके सब रास्ते खुले है। हिन्दीमे ही क्यो, किसी भी साहित्यमे यही बात है। आकार नही प्रकार होना चाहिए। नये प्रयोगोकी उत्कट लालसा। आप देखेगे कि आपके मार्गको रोकनेवाला कोई भी नही है।" मैंने आत्म-विश्वाससे उसकी ओर देखा, फिर अपनी खिडकीसे बाहर दीवालोपर रगे-पुते घरोको देखा। अभी रात होनेमे घटा आध घटाकी देर है। सारा नगर अभी खड-खड आलोककी अखडित विभामे झलमल-झलमल कर उठेगा।

"तुमने अभीतक कितनी कहानियाँ लिखी है ?" मेजपर जोरसे चायका प्याला रखते हुए सुधीरने पूछा।

उसके स्वरमे उपेक्षा थी, मैंने अनुभव किया। विना उस ओर ध्यान दिये ही बोला "अभी बताया न, केवल पाँच ! और पाँचवी कहानी यह आपके सामने है—हिन्दीकी प्रथम श्रेणीकी पत्रिकामे प्रकाशित।

गुलेरीजीने केवल तीन कहानियाँ लिखी, पर उनकी वह कहानी जिसने उन्हे अमर वनाया, 'उसने कहा था' थी। और मेरी " इन लोगोके समक्ष अपनेको रख देना उचित होगा या नही, एक वार मेरे मनमे यह शका उत्पन्न हुई। पर दूसरे ही क्षण मे वोल उठा "मेरी एक कहानी मुझे अमर वना देगी—वह है 'भोरकी आशा'!"

"क्या है, तुम्हारी उस कहानीमे ?" किसी उत्तरदायी जजकी मुद्रामे सुधीरने सोफेके हत्थेपर कुहनी रख दी, फिर उसके ऊपर ठोडी, फिर मुझे एकटक देखने लगा।

"होगा क्या", अनन्तने कहा "एक लडकी, और एक लडका आपसमे मिले, विछुडे तो जनमभर रोते रहे, मर गये, आत्महत्या कर ली या मिल गये, जैसा और कहानियोमे होता है।" अनन्त जोरसे हँस पडा, साथमे सुधीर भी।

"जी नही", मैने जोरसे कहा। "मै वैसी कहानी लिखनेवालोमे नही हूँ। उसमे है आजकी खोखली साम्राज्यवादी, पूँजीवादी व्यवस्थासे मुक्तिके प्रति अडिग और अपराजेय आस्था। जनताका इस रात्रिकी सीमाओके परे, स्थिर पगोसे चले आनेवाले उस अरुण विहानमे विश्वास!"

"और इस विश्वासके साधक या वाहक कौन है ?" सुधीरने कुटिलतासे मुस्कराकर परीक्षककी भाँति पूछा। मुझे लगा जैसे वह मुझे किसी विशेष दिशामे धकेल रहा है।

मैने कहा "किसान और मजदूर पढना नही जानते। उनके लिए लिखना व्यर्थ है। किसी दिन अपना साहित्य वे स्वय रचेगे। हलकी मूठ पकडकर प्रचड धूपसे तपकर जो उद्गार उनके अन्दरसे पिघलकर फूट पडेगे, वही उनका सच्चा साहित्य होगा। सवसे दयनीय अवस्था आज उस वर्गकी है, जो अर्थकी चक्कीमे वुरी तरह पिस रहा है, धार्मिक अन्धविश्वास जिसकी छातीसे एक भी श्वास नही फूटने देता; वश और कुलगत मिथ्यादम्भ जिसकी खोपडीमे पुराने गुम्बदमे चिमगादडोकी

तरह दिन-रात चक्कर मारा करते हैं। एक शब्दमे वह वर्ग जिसे धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक विडम्बनाएँ अनवरत पीस रही है, फिर अपनी मानसिक कुठाएँ तो है ही। फलत मेहनतका कोई भी काम करनेमे वह अपनी मानहानि समझता है।" मैंने गर्वसे उन लोगोकी ओर देखा। मुझे लगा मै वाल-वाल उनके फन्देमे निकल गया हूँ। चायके तीनो कप मैंने मेजपर एक स्थानपर रख दिये।

"अरे छोडो भी !" सुधीरने उठते हुए कहा। "चलते हो, रोशनी देख आये।"

"अभी रोशनी कहाँ ? चलेगे, आठ वजे वाद !" मै वैठा रहा।

"तो भई, हम तो चलते है।" खडे होकर उसने अँगडाई ली।

"और अनन्त तुम भी ?" मैने अनन्तकी ओर मुँह किया।

"जाऊँ ?" उसने पूछा।

"अच्छा, आठ वजे मै आजाऊँगा, रोशनी देखनी है, और सैंकिडगो।" सुधीर कमरेके पर्दे हटाता हुआ चला गया। जीनेसे उसके जूतोकी आवाज हमने सुनी।

"तुममे एक बहुत वडी दुर्वलता है ध्रुव", अनन्तने उसके जाते ही गम्भीर स्वरमे कहा "तुम साहित्यको सबसे वडा हथियार समझते हो !"

"और साहित्य है भी !" मै वड़े आत्म-विश्वाससे मुस्कुराया।

"वात तो सुनो पूरी", अनन्तने क्षुब्ध होकर कहा। "जहाँतक मनुष्य-समाज और राष्ट्रके धार्मिक और सांस्कृतिक पक्षकी वात है, मै मानता हूँ साहित्य सवसे वडा हथियार है, किन्तु आर्थिक पक्षका एकमात्र हथियार राजनीति है, उस स्थानपर साहित्य अपनी परिभाषा ही नही खोता, वरन् स्तर भी छोड देता है।"

"आजकल तो भई, सभी साहित्यके पीछे पडे हे। मै पूछता हूँ क्या मेडीकल कालेजका तेरा सारा कोर्स समाप्त हो गया जो तू इन वातोमे व्यर्थ ही टाँग अडा रहा है ?"

मैंने झुँझलाकर कहा . "साहित्यको इतना सीमित क्यो वनाते हो। साहित्य समाजकी सूक्ष्मसे सूक्ष्मतम मनोवृत्तिका प्रतिविब होता है।"

"हॉ, लेकिन प्रतिविव होना एक वात है और इलाज होना दूसरी।" मानो उसने अकाटच तर्क दिया।

"मूर्ख !" मैने कहा "इलाज और रोग तेरा पीछा कभी नही छोडेगे।" मैंने सिगरेटका डिब्बा उठा लिया। वहस करते काफी देर हो गई थी। सिगरेट निकाली। एक उसे दी। जलाई।

"इन सव वातोका अर्थ यह मत लगाना, मै तुम्हारी कहानी-कलामे सन्देह प्रकट कर रहा हूँ।" सिगरेट जलाकर उसने सोफेपर पीठ टेक दी।

मै मुस्कुराया—विजयसे। "आखिर आये न वही !"

तभी सामनेवाले कमरेके किवाड खोलकर भिक्कूने झॉका। यह हमारा नौकर था।

"क्या है ?" मैंने एकदम पूछा।

"भैयाजी, उमा वाबूके यहॉ आपको बुलाया है।"

"मुझे ? कौन उमा वाबू ?" मै चौककर सीधा वैठ गया।

"इस गलीवाले नुक्कडपर। वाजारसे मै मोमवत्ती लेने जा रहा था, तभी उन्होंने बुलाकर कहा : 'अपने ध्रुव भैयाको भेज दो'।"

"काम नही पूछा ?" वात अभी मेरी समझमे नही आई थी।

"सिर्फ भेज देनेको कहा।" और वह जाने लगा।

"अच्छा, तू प्लेट और कप ले जा, जरा फूलदान, मेज कुर्सी ठीकसे लगा दे, कोई आये जाये", मैंने उससे कहा। "आना अनन्त, जरा पूछ आये।"

अनन्त चुपचाप सिगरेट पीता हुआ कमरेसे वाहर आया, जीनेसे उतरा। नीचे आकर वोला "तुम उन्हे जानते नही हो ?"

"नही, जरा भी नही। समझमे नही आता क्यो वुलाया है।" चिन्तित स्वरसे मैंने कहा।

"अरे, बुलाया क्यो है, दीवाली है, चारो ओर लोग आनन्द मना रहे है, दीये जलेगे अभी। बाजार चहक रहा है, सोचा होगा, मिल ले। कमसे कम पडोसीके नाते ही सही। लेकिन यह आश्चर्य है, तुम उन्हे जानते नही। अच्छे पडोसी हो भाई।"

"यहाँ मै रहता भी बहुत कम हूँ, फिर भी अपने कामसे काम रखता हूँ। लेकिन समझमे नही आता बुलाया क्यो है।" बाई ओर मुडकर गलीमे आये। अन्धकार बढने लगा था, लेकिन अभी बत्तियाँ नही जली थी। बीस पच्चीस कदम चलकर खेलते हुए एक बालकसे पूछा "उमा बाबू कहाँ रहते है?" उसने थोडी दूर सकेत किया, बन्द, हरे किवाडोकी ओर।

हम दोनो उस द्वारके सामने जाकर खडे हो गये। मुझे आश्चर्य हुआ। उमा बाबू इसमे कबसे रहने लगे? जब मै बहुत छोटा था तो इसमे खेलने आया करता था। एक विधवाका मेरे बराबरका ही लडका था। बहुत स्नेह मानती थी वह हमसे। धीरे-धीरे उसकी स्मृतियाँ साकार हो उठी। लेकिन जहाँतक मुझे याद है यह मकान तो बहुत छोटा है। एक दालान, एक कमरा, और एक कोठरी। बस। थोडी देर हम लोग वहाँ खडे रहे। बडी झेप लग रही थी इस प्रकार खडे-खडे। आवाज देनेमे झिझक-सी मालूम होती थी। सोचा, किसी आने-जानेवालेसे ही कहे। पर कोई दिखाई ही नही देता था। वह बच्चा भी न जाने किधर चला गया था। एक बार सिर उठाकर उस मकानको देखा। इधर-उधर दुमजिली, तिमजिली हवेलियाँ, केवल वह घर ही एक मजिलका था।

अनन्त विचारमग्न-सा सिगरेटकी अन्त्येष्टि कर रहा था। एक बार सिर उठाकर बोला "उमा बाबूने अपना मकान पुतवाया भी नही है।"

इस बार मैने भी ध्यानसे देखा। आसपासके मकान पुते हुए थे।

केवल वही मकान सभ्योकी पक्तिमे घुसे हुए अनधिकारी गँवारकी भाँति झाँक रहा था। बडे भिचेसे कण्ठसे पुकारा "उमा बाबू!"

अन्दरसे साँकल बजी। किवाडोमे दरार हुई। किसीने कहा "भीतर आ जाइये।" स्वर कोमल, सरस, मधुर और हृदयस्पर्शी था। किसी कोकिलकठका। उस स्वरमे और क्या था, मै नही समझ पाया। किवाड खुल गये। आगे-आगे मै, पीछे अनन्त आगे वढा।

कमरेमे सबसे पहले स्टूलपर रखी छोटी-सी लालटेन दिखलाई दी। उसीके प्रकाशमे इधर-उधर देखा। छोटा-सा कोठरीनुमाँ लम्बा-सा कमरा और लालटेनवाले स्टूलके पास ही एक खाट बिछी हुई थी। मैली रजाईसे ओढे उसपर कोई लेटा हुआ था, सो रहा था, हमारे जानेपर भी नही हिला। स्टूलके पास ही एक टूटी कुर्सी रखी थी। उसपर एक छोटा-सा काँचका गिलास और शीशी रखी थी। शायद सोनेवाला बीमार था। उस खाटसे थोडा हटकर जो द्वार भीतर दालानमे गया था वह स्त्री उसीमे चली गई थी। मैने चारो ओर देखा। कमरेकी सफेदी पुरानी होकर मटमैली हो गई थी। खाटसे थोडा हटकर एक ढीले जोडवाली कुर्सी पडी थी। उसके बराबर घिसे-घिसाये, एक ओरको झुके-से दो मोढे। लालटेन अभी साफ की गई लगती थी, क्योकि उसमे साफ करनेकी धारियाँ स्पष्ट थीं। खाटके ऊपर 'सुख सचारक कम्पनी'का तीन वर्ष पुराना कैलेण्डर टँगा था। ऐसा लगता था जैसे कमरेमे चीजें कम है। एक विचित्र सूनापन उस विचित्र छोटे सकीर्ण कमरेमे व्याप्त था। उस स्थानपर ज्योके त्यो हम खडे रहे। सामने दीवालपर छततक हमारी परछाइयाँ खडी थी।

तभी द्वारमे वह स्त्री आई, वहाँ चौखटसे लगकर खडी हो गई। बोली "आप लोग बैठ जाइये।" उच्चारण और स्वरकी स्पष्टतासे लगा कि वह शिक्षिता है।

मोढे खीचकर हम लोग बैठ गये। मेरा मोढा एक ओर झुककर

गिरनेको हुआ, पर मैंने सँभाल लिया। उत्सुकतासे कान उधर ही लगे हुए थे। आते समय तो मैं उसे देख नही पाया था, अब अनुमान लगाया कि शायद वह युवती ही थी।

एक बार वह खाँसी, गला साफ करके, पहले फटे-से, बादमें सयत स्वरमे कहा "आज सुबहसे ही इनकी तबीयत अधिक खराब हो गई है। अब तो दोपहरसे ही न बोलते है, न हिलते है, न डुलते है।"

ध्यानसे सुना, फिर इधर-उधर देखा। अब कुछ-कुछ बात समझमे आ रही थी। अचानक पूछ लिया . "क्या हो गया है इन्हे ?"

"डाक्टरने बताया कि टायफाइड हो गया है। कुछ दिन पहलेतक खुद किसी न किसी तरह पासवाले डाक्टरके पास घसिटकर पहुँच जाते थे। पर डेढ महीना हो गया, पीछा ही नही छोड रहा यह बुखार।" मुझे लगा उसका स्वर धीरे-धीरे पिघलने लगा।

"क्यो और कोई नही है ? पास-पडोसवाले किसीसे दवा मँगा लेती।" मैने कहा।

"किसे फुर्सत है इधर-उधर देखनेकी। अछूत है हम लोग तो।" शब्दोपर जोर देकर उसने कहा। मुझे लगा तीव्र कटु व्यग उन शब्दोमे झनझना रहा था।

"अछूत ?" मैंने दुहराया। एक बार सारे कमरेको फिर देखा, विश्वास नही हुआ।

"हाँ, यहाँ हम अछूत ही समझे जाते है। मैं बाल विधवा हूँ। हम लोगोने समाजसे विद्रोह करके विवाह किया है। यहा आ गये एक डेढ वर्षसे, पर समाजके अभिशापकी यह परछाई हमारे साथ हमेशा लगी है। मेरी तो कोई बात नही, यह बेचारे घरवालोकी सहानुभूतिसे ही वचित नही हुए, उत्तराधिकार भी छिन गया। उन लोगोको क्या मालूम नही होगा, डेढ महीनेसे बीमार है ! नौकरी छूट गई है। पर कौन क्या

कहे।" उसका स्वर फिर आर्द्र हो आया था। "यहाँ हमारी सहायता करना साँपोको दूध पिलाना है, हमने धर्मके प्रति विद्रोह किया है। समाज-की व्यवस्थाके प्रति अविश्वास किया है न! इसलिए अछूत हैं!" और वह विद्रूपसे हँसी। मुझे तत्काल अनुभव हुआ, कितनी विषाक्त उसकी हँसी थी।

"सुना था, आप कहानी-लेखक हैं, एक कहानी भी पढी।" कुछ रुककर कहा "आपकी सहानुभूति विस्तृत है, आप विश्व-बन्धु है, इसीलिए बुलानेका साहस कर लिया।"

मैं धीरेसे हँसा, जैसे लजा गया होऊँ। मुझे लगा अनन्तकी आँखोमे आँसू आ गये। छि भावुक, दुर्बल हृदय! उसने धीरेसे आस्तीनसे पोछ लिये। मैं इस प्रकार अकेला रोने वाला नही हूँ। मैं इसपर ससारको रुलाऊँगा। अनन्तने धीरेसे मोढा खीचकर खाटके बराबर कर लिया। निश्चेष्ट लेटे रोगीकी कलाई पकडी, नब्ज देखी, और सहसा चिहुक पडा। फिर धीरे-धीरे गम्भीर होने लगा।

"जबतक होशमे थे, कराहते रहे कि पसलियोमे दर्द होता है।" फिर किवाडोसे आवाज आई।

"तो आपने सेका नही?" इस बार अनन्तने पूछा।

"न"।

"तो जरा एक अँगीठी जला लाइये।" अनन्तने कहा।

मैंने देखा, उधर चौखटसे लगी वह नारी ज्योकी त्यो खडी रही। आश्चर्य हुआ। धीरे-धीरे देखनेपर मालूम हुआ रो रही है।

"अरे आप रोती है! इसमे रोने और घबरानेकी कोई बात नही। सब-ठीक हो जायगा।" अनन्तने कहा। सान्त्वना देते-देते उसका कठ स्वय काँप उठा।

कुछ क्षण चुप रही, फिर बोली. "घबरा तो नही रही हूँ, आपके सामने निकलते लज्जा होती है!"

"अरे, हम लोग तो आपके छोटे भाई है, ऐसी बात आपको सोचनी भी नही चाहिए", मैंने कहा। यह सब क्या हो रहा है, क्या होनेको है, समझमे नही आ रहा था।

"सेकनेकी बात मै स्वय सोच रही थी। अँगीठी तैयार है, अभी लाती हूँ।" फिर वह चली गई।

उसके जाते ही अनन्तने बडी गहरी साँस ली। मुझे लगा, साँसके साथ आँसू भी उसकी आँखोमे उमड आये है। बोला "बहुत देर हो चुकी है।"

"क्या मतलब ?" इस बार वास्तवमे मै चौका।

"यह उमा बाबू बच नही सकते !" ध्यानसे उसने उनके माथेपर हाथ रखा, धडकन देखी। फिर बोला "आध घटा, केवल आध घटेकी मेहमानी है।" फिर उसने बडी गहरी साँस छोडी "टायफाइडके साथ निमोनिया है।"

"ओफ !" मेरे मुँहसे निकल गया।

तभी द्वारपर आहट हुई। हम लोग सचेत हुए। दोनो हाथोमे अँगीठी पकडे वह आती दिखाई दी। जलते कोयलोके दहकते प्रकाशमे उसका मुखमडल प्रदीप्त हो रहा था। गेहुआँ रग, सीधी-सुती नाक, प्राय. सुन्दर पूर्ण-युवामुद्रा। पतले ओठ कसकर बन्द किये हुए। एक अस्वाभाविक किन्तु अभेद्य दृढतासे व्याप्त सारा मुख। बाल अस्त-व्यस्त और पीछे बिखरे हुए। एक बार उसे सम्पूर्ण देखनेकी इच्छा हुई। स्थिर और सयत पगोसे उसने अंगीठी लाकर अनन्तके मोढेसे थोडी दूरपर रख दी। इस बीचमे मैने देखा, उसका नीचेका ओठ बहुत दाबनेपर भी रह-रहकर काप जाता था, जिसे उसने जोरसे दाँतोसे दबा लिया था। अँगीठी रखकर वह सीधी हुई। मैने देखा और न जाने क्यो एक बार सारा शरीर रोमाचित हो उठा। न जाने कितने स्थानोसे फटी थिगली लगी बटी मैली-सी धोती जिससे वह अपने शरीरके सभी अगोको ढँक लेना चाहती थी। केवल

एक वाडिस्। नीचे पेटीकोट भी नही। धोती इतनी अधिक फटी हुई कि स्थान-स्थानसे उसका अंग दिखाई देता था।

"कपडे नही है, इसलिए निकलनेमे लज्जा होती थी", इस बार बड़े आत्मविश्वाससे उसने कहा। फिर सिरहाने खडी हो गई, इसलिए कि अनन्त कुछ कहे और वह ला दे।

मेरा ध्यान गया। हाथोमे केवल दो काँचकी चूडियाँ थी, नाकमे सीक। और ऊपरसे नीचे एक छल्लातक मुझे दिखाई नही दिया। मै अन्धविश्वासी तनिक भी नही हूँ, पर उस समय सहसा उजडे उपवनकी कल्पना अपनी विभीषिकासे मुझे कँपा गई।

"बाहर निकलकर मेहनत-मजूरी करूँ तो फिर इन्हे सँभाले कौन! फिर . फिर कभी किया भी नही।" इस बार फिर जैसे उसकी दृढता विचलित हो उठी। थोडी देर यो ही ऊपरकी साँस ऊपर और नीचेकी नीचे साधे रही, फिर जैसे किसी चीजको निगल गई। मै उसकी प्रत्येक भगिमाको देख रहा था।

अनन्त झुककर एकटक रोगीकी ओर देखता रहा, न जाने क्या सोचता हुआ। रह-रहकर उसकी आँखोमे हल्का जल आ जाता और फिर कोरोमे जाकर सूख जाता। मै कभी रोगीके निर्जीवसे शरीरको देखता और कभी उस युवतीको जो शिक्षिता है, कहानियाँ समझती है। उसका मुख कभी जड पत्थर-सा भावविहीन हो जाता, कभी-कभी आँखोके नीचे कुछ सिकुडने पड जाती और दो कोरोसे कातरता झाँकती। तभी मैने ध्यान दिया, उसके ओठ पपडाये हुए है और आँखोके चारो ओर काले घेरे है। शायद कई रातोसे वह जागी है। ध्यानसे देखनेपर मैने स्वीकार किया, लडकी सुन्दर है। न जाने उस बेचारीके हृदयपर क्या बीत रही होगी। शायद उसे ध्यान भी नही है कि आज दीवाली है। केवल झाँक लेने भरसे मालूम हो जायगा कि सारा नगर कैसी प्रकाश और उल्लासकी तरगोमे झूल रहा है। अभी यदि वह रोगी मर जाता है तो कोई सहारा,

कोई आश्रय, कोई आशा, इस वेचारीको नही है। क्या करेगी ?—मूर्ख, नाकमे सीक लगा ली है कि छेद वन्द न हो जाय, शायद कभी सोनेकी लौंग पहिननेको मिले!

वडे झिझकते और सकुचित कठसे अनन्त वोला "थोडी रुई है, पुरानी, आपके पास ?"

वह चुपचाप चली गई।

"दुनियामे मनुष्य होना शायद सबसे वडा पाप है।" अनन्तने तात्त्विक दार्शनिककी मुद्रामे कहा।

मै सहसा उठ खडा हुआ।

अनन्तने प्रश्न-मुद्रासे मेरी ओर देखा।

"अनन्त, मै इसे सह नहीं सकता। आज जो कुछ देखा है उसे अमर वनाने जा रहा हूँ। वैभव-प्रमत्त वर्गको वताऊँगा कि तुम्हारे यह सुरभित अट्टहास इन सिसकते हुए जीवोके प्रति व्यग है, उपहास है! मै जाकर कहानी लिखूँगा", मैने कहा और द्वारकी ओर मुडने लगा।

"अरे इस समय " अनन्त एकदम चौका।

"नही .नही, तुम रोको मत। मै अपने उद्गारोको अधिक दवा नही सकता। इस समय मुझे कोई दैवी स्फुरण अपने अन्दर अनुभव हो रहा है। मै इस करुण दृश्यको छोड नही सकता। और यदि मैंने अब नही लिखा तो समझ लो, साहित्यकी एक अनुपमेय कहानी रह जायगी। मै फिर नही लिख सकता।" और फिर मै यह कहता हुआ वाहर आ गया · "तुम तो हो ही, आवश्यकता हो तो वुला लेना।"

मै गली मे आ गया।

"अरे भले आदमी, कहानी पीछे ही लिख लेते, कुछ सहायता करो मेरी!" मैंने सुना शायद पीछेसे कोई कह रहा था, पर मैंने ध्यान नही दिया। सोचने लगा, कैसे इन सवकी कहानीको एक सुगटित 'प्लाट' मे वैठाया जाय!

आज-कलके लड़के

[१]

एक दिन था।

पिताजीके मरनेका तार आया। मै स्तम्भित रह गया, विश्वास नही कर सका। शहरमे ही रहकर मै मैट्रिककी पढाई कर रहा था। छमाही परीक्षाएँ हो चुकी थी। अव वार्षिककी तैयारी थी। पिताजी कस्वेमे मवेशीखानेके मुन्शी थे, यहाँ एक बहुत छोटी-सी कोठरी ले रक्खी थी। छुट्टियोमे घर जाकर कुछ खाने-पीनेका सामान ले आया करता था, स्वय बनाता और पढता। इसी प्रकार लस्टम-पस्टम काम चल रहा था और अब ? अब मै क्या करूँ, मै समझ नही सका। खाना खाकर स्कूल जानेकी तैयारी कर रहा था। हाथकी किताबे छूटकर पृथ्वीपर जा गिरी और मै खाटपर इतने जोरसे गिर पडा कि उसके सारे पाये-पट्टी मचमचा उठे। मेरे घरकी क्या अवस्था है मै जानता हूँ, अव क्या होगा ? कैसे चलेगी मेरी पढाई ? और १५ वर्षकी मेरी वहन अरुणा ? क्या सचमुच पिताजी इस ससारमे नही है ? मेरे अन्दरसे एक आवाज आ रही थी "छि तू कैसा निष्ठुर है ? तेरे पिताजी मर गये है और तेरी आँखोमे एक आँसू नही ?" कोशिश करके भी मै रो नही पा रहा था। मेरी वे सारी महत्त्वाकाक्षाएँ ! बडी देरतक मै यो ही निश्चल जड-सा पडा रहा, फिर जोरसे साँस खीचकर उठ बैठा, इतने जोरसे मैने शायद ही कभी जीवनमे साँस ली हो।

उसी दिन सन्ध्याको मै घर आ पहुँचा। मुझे मालूम नही हो रहा था कि मै क्या कर रहा हूँ, मेरे आसपास चारो ओर आखिर हो क्या रहा है ? द्वारपर ही मेरी वहन खडी थी। देखते ही मै फूट-फूटकर रो पडा, अचानक उससे लिपट गया।

तीन दिनतक घरकी क्या अवस्था रही मै नही कह सकता। घरकी

किसी कोठरीमे जाता तो लगता देखूँ घडेके पीछे पिताजी तो नही बैठे है पर तभी जैसे कोई डॉट देता 'हिश् क्या वेवकूफी जैसी वाते कर रहा है,' आखोमे आँसू भर आते। या तो मुझे लगता पिताजीकी आत्मा मेरे चारो तरफ सारे वातावरणमे परिव्याप्त हो गई है या लगता जैसे सारी ठोस वस्तुओका घनत्व कोई निकाल ले गया है, महाशून्य चारो तरफ फैल गया है। मेरे घरकी ईट-ईट खोखली हो गई है। सारा घर रोता था किन्तु मुझे खुलकर रुलाई ही नही आती थी। चुपचाप रहूँ और अपने अन्तरसे उठनेवाले हर भ्रमके ज्वारमे अपनेको बहनेके लिए मुक्त कर दू, जिस भी किसी वस्तुमे देखता तो मुझे लगता यह एक दिन ढह जायेगी, नष्ट हो जायेगी। कोई भी हँसता खेलता गेता मनुष्य देखकर लगता यह ऐसा क्यो कर रहा है? इसे नही मालूम एक दिन चितापर रखकर जला दिया जायेगा।

और तीसरे दिन मेरे शहरमे रहनेवाले चचेरे भाईने मुझे बुलाया। अम्मा भी वहाँ बैठी थी। सबकी सूरते गम्भीर और गमगीन थी। मै स्वय भी चुप था। मै अम्माके पास खाटपर बैठ गया। भैया एक टूटे-से मूढेपर बैठे थे। थोडी देरतक सब चुप रहे।

"देखो, अब तुम बच्चे नही रहे हो।" भैयाने मुझसे कोमलतासे कहा, "सब समझते हो आगे कैसे होगा?"

मुझे नही मालूम था कि मै बडा हो गया हूँ और सब समझने भी लगा हूँ, अत्यधिक सकुचित हो उठा। धीरेसे कह दिया, "जैसा आप चाहे।"

"आखिर तुम भी तो कुछ चाहते होगे।" उन्होने एक बार अम्माकी ओर देखा—"तुम्हारे इम्तहानके तीन महीने रह गये है, मेरा तबादला भी इसी शहरमे हो गया है सो मैट्रिकका इम्तहान तो दे लो, इसके बाद कही लगा देगे।।"

मैने सिर हिला दिया। चाहता भी यही था।

"क्यो चाची, ठीक है न तीन-चार महीने तो तुम दोनो माँ-बेटी जैसे-तैसे काट लो यही, फिर यह कही लग ही जायेगा।" सहानुभूतिसे उन्होने कहा फिर मुँहपर अधिक स्निग्धता लाकर बोले "तुम्हे भी मैं साथ ही ले चलता पर क्या करूँ जगह नई है, मकान-अकानकी कितनी दिक्कते है आज-कल शहरोमें, यह तो तुम जानती ही होगी। सुनती रहती होगी फिर यहाँ भी तो सँभालना है।"

माँका अत्यधिक गम्भीर मुख धीरेसे हिला और इसके पश्चात् अन्य बहुत-सी बाते होती रही। कुछ पिताजीकी प्रशसामे थी जिन्हे सुनकर माँ फूट-फूटकर रो उठी थी। कुछ प्रबन्ध इत्यादि शहरोकी कठिनाइयोमेसे थी। अन्तमे भैया उठते हुए बोले "अच्छा चाची, तो यह वही रहेगा कोई बात है ही नही, सब एक ही है। तुम्हे भी भाई नवल, खूब ध्यानसे पढना है। और कौन है, तुम सब समझते ही हो।" और भैयाने बडी गहरी साँस खीची, इनके पिताजीसे हमारे पिताजीकी लडाई थी। पर वे हम सबसे खूब बोलते थे। इस समय जब मेरी आँखोके आगे बिजलीकी क्षणिक चमक-सी यह बात आई और चली गई कि अब तो अपने घरमे सबका उत्तर-दायित्व मुझपर ही है तो मै ऊपरसे नीचेतक जैसे सिहर उठा, मेरी आँखे भर आई, मेरी इच्छा हुई भैयाकी भाँति मै भी बडी गहरी साँस खीच लूँ।

मै शहरमे आ गया था। भाभीका वात्सल्य पाकर मै विभोर हो उठा। पहिले दिन वे मुझे अपने पास बिठाकर बडी देर अम्मा आदिके विषयमे पूछती रही। पिताजीकी बाते करते समय वे रो पडती। फिर मुझे भविष्यमे उत्तरदायित्व निभानेका उपदेश दिया, भैयाका सबसे बडा लडका बनारस विश्वविद्यालयमे पढता था और शेष दोनो लडके लडकी यही थे। तो उस दिन दो घंटेतक बाते करते रहे, भाभीसे मिले बहुत दिन हो गये थे। मिलकर प्रसन्नता हुई और उस समय तो मै गद्गद हो उठा जब उन्होने कहा कि दूसरे-तीसरे दिन याद करके वे भैयासे मुझे कमसे क्रम एक दिन-

को ही हो जानेका अनुरोध कर लेती थी। उस दिन जव मैं सोने गया तो शोककी वह प्रगाढ छाया जो मेरे मस्तिष्कपर सारे धुंधलेपनसे छाई हुई थी विलीन हो चुकी थी, मेरा हृदय हल्का और स्वस्थ था। रातको देरतक मैं कल्पनाके जाल बुनता रहा कि इस स्नेह-शीतल वात्सल्यकी छायामे मैं परीक्षाके यह तीन महीने काट लूँगा फिर स्वावलम्बी बनकर सुयोग्य पुत्रकी भाँति माँकी सेवा करूँगा। अरुणाकी शादी भी तो मुझे ही करनी है, सब करूँगा। इसी प्रकार मैं धीरेसे कब सो गया मुझे पता नही।

प्रात काल उठा। भैयाने मुझे मकानका एक छोटासा कमरा या कोठरी बता दी। कहा इसमे तुम अपना सामान रखो, यही रहो, कोई चीज इधर-उधर पडी दिखाई नही दे। और वह कमरा मैंने अपने लिए ठीक किया। नहा-धोकर मैं पुस्तक खोलकर बैठ गया, तभी भाभी एक प्लेटमे हलुआ और कपमे चाय ले आई, स्निग्ध स्वरमे बोली। "ले भैया, नाश्ता कर ले", इनकी उम्र चालीस सालके लगभग थी।

मैं एकदम उठकर खडा हो गया, सकोचसे गडा-सा जाता हुआ। "अरे आप ये क्यो ले आई बेकार? मुझे वही बुला लेती"।

"उहूँ, क्या हुआ। अब आप वहाँपर जाते, मेरा क्या घिस गया?" उन्होने कहा फिर तेजीसे कमरेसे चली गई। "खाना बना लूं, तुम लोगोको स्कूल भी तो जाना है।"

मैं उन्हे नाश्तेमे सहयोग देनेके लिए बुलाता ही रह गया, नाश्ता करनेके पश्चात् जूठे बर्तन मैं स्वय ही रख आया कि उन्हे लेने आनेको भाभीको फिर तग होना पडेगा। उस दिन खाना खाकर मैं गया तो अपनेको अत्यधिक भाग्यशाली समझता था। पहिले मैं जिस स्थानपर खाना खाता था उसकी और इस खानेकी तुलना करनेपर मेरा मन घृणासे भर गया। छि कैसी दाल, कैसी रोटी और यह कोई तुलना नही। इसकी तुलनामे मैं वास्तवमे वहाँ पशुओका ही खाना खाता था। वहाँ गिनतीकी

दो रोटियाँ रखकर ढेरके ढेर चावल रख दिये जाते। मुझे शुरूसे चावल खानेमे उबकाई-सी आती है किन्तु अकालका समय, राशनसे मिलनेवाला खाना जैसा भी मिले उसे खाओ या भूखे रहो। उस कठिनाईको मैं ही जानता हूँ कैसे पानी पीकर चावलोके एक-एक कौरको मैं पेटमे पहुँचाता था, और यहाँ ? .

उस दिन मैं अपनी कोठरीसे कामकी आवश्यक वस्तुएँ निकाल लाया। उसे बिल्कुल खाली कर देनेकी मेरी इच्छा थी पर उसका इम्तहान तकका किराया मैं अग्रिम दे चुका था उसे कोठरीवाला किसी भाँति लौटानेको तैयार न हुआ, अत कुछ व्यर्थकी वस्तुएँ उसीमे छोडकर मैं ताला लगाकर भैयाके पास आया। अब मैंने निश्चय कर लिया कि यह वातावरण मेरे पूर्णतया अनुकूल है। मुझे अपना सारा ध्यान अब पढनेकी ओर लगा देना चाहिये। रात-दिन मेहनत करके मै परीक्षामे अच्छासे अच्छा स्थान पानेकी कोशिश करूँगा।

दूसरे दिन भाभीने मुझे नाश्ता करनेके लिए रसोई ही मे बुला भेजा। ताज़ा नमकीन खस्ता परावँठा और चाय उस दिनका नाश्ता था, आजका खाना कलसे सादा था।

तीसरे दिन मैं प्रतीक्षा कर रहा था कि नाश्ता करने शायद भाभी बुलाएँगी पर जब बहुत देर हो गई, मुझे भूख लगी तो बडा हिचकता झिझकता मैं स्वय रसोईमे पहुँचा। मुझे देखते ही भाभी बोली "जबसे तुम्हे नाश्तेको बुला लानेको कह रही हूँ नवल, इस उदयसे लेकिन इसने सुनकर जरा भी ध्यान नही दिया, लो, कर लो बेटा।" और उन्होने सादा परावँठा कटोरदानमेसे निकालकर रख दिया। चाय ठडी-सी हो गई थी। मैंने नाश्ता कर लिया। उस दिन खानेको एक साग दाल रोटी थी केवल। सात दिन मुझे यहाँ आये हो चुके थे। आज मै नाश्ता करने गया तो भाभी बोली। "भैया आज तो मै बना ही नही सकी, सुबहसे ही काममे जुटी हूँ, अब तुम स्कूल-वालोके लिए खाना बना रही हूँ, रातको बना एक परावँठा रखा है, चाहो

तो खा लो। नही तो मै अभी वनाये देती हूँ अभी, उहूँ लकडी भी तो और वे सिर झुकाकर फूँक मारने लगी। जल्दीसे तश्तरीमे रातका वह परावँठा रख दिया। थोडा-सा अचार, और वे खाना वनानेमे जुट पडी, मैने नाश्ता कर लिया, आज मेरे खानेमे थोडेसे चावल रखे गये।

स्कूल जानेवाला था तभी भैयाने पूछा। "क्यो पन्द्रह तारीख कल है। फीस लगेगी तुम्हारी, कितनी लगेगी ? दे आना।"

"सात रुपया" मैने कहा,

"तो दे आना सात रुपये तो होगे ही तुम्हारे पास।" भैयाने कोटके वटन लगाते हुए कहा,

"जी हाँ" मेरे मुँहसे निकल गया, चलते समय चालीस रुपये माताजीने दिये थे उन्हीमेसे सात रुपये फीसको ले गया।

यहाँ आये हुए मुझे पन्द्रह दिन हो गये, नाश्ता करने स्वय पहुँचा तो भाभीने कहा "आज तो भैया वचा ही नही कुछ। खाना खा लेना अभी वना जाता है" आज चावलोकी मात्रा खानेमे वढते-वढते वहुत अधिक परिमाणमे आ चुकी थी, आज मुझे खानेके अर्थको पेट भरनेकी व्यजनामे लेना पडा।

सन्ध्याको स्कूलसे पढकर आया तो देखा भैया इला, छोटी लडकीका कान पकडे हुए वडे तेज स्वरमे डाँट रहे थे। "तुझे मेरे कमरेमे आनेकी जरूरत ही क्या थी ? चल उधर नवलके कमरेमे, लो जी नवल पढाओ इसे। एक घटे इन दोनो वदमाशोको पढा दिया करो, खूब कान ऐठो इन वदमाशोके।"

उस दिनसे स्कूलसे आकर मै एक घटे उन्हे पढाने लगा।

वीसवा या पच्चीसवाँ दिन था मुझे ठीकसे याद नही है। मै स्कूलके समयसे पहिले खाना खाने आया तो देखा, इला और उदयने मुझे देखते ही वडी जल्दीसे कोई चीज मुँहमे रख ली। उनके हाथोपर लगी चाश्नी देख-कर मैने अनुमान लगा लिया मिठाई होगी, ऐसी वातोपर ध्यान देनेका

मेरा स्वभाव नही है, खाना अभी वना नही था। मै आकर बैठ गया था, एक-एक मिनिट स्कूलको देर हो रही थी, मै इतने दिनोसे सब देख रहा था। समझ रहा था। भाभीके मुखकी स्निग्धता अदृश्य होती चली जा रही थी, अपनत्वके जिस मधुर सरस, ससारमे मैने यहाँ आनेपर कल्पनाके कोमल जाल बुने थे मुझे अब वह केवल भ्रम-सा जान पडने लगा। मुझे प्रतिक्षण अनुभव होता रहता जैसे मै इन सबसे पृथक् हूँ और प्रयत्न करनेपर भी अपनेको इनमे मिला नही पा रहा हूँ, और मेरा यह पृथक्त्व कुछ बोझिल हो चला है ?:

"लकडी भी तो नही है" और भाभीने भन्नाकर चकलेपर जोरके वेलन पटका, "इतने दिन पहिलेसे कह दिया था, अब स्कूल वालोको देर हो रही है, बताओ मै क्या खुद जल जाऊँ चूल्हेमे, सुबह चार वजेसे उठकर पिलती हूँ रातको वारह वजेतक।" यह बात पासके कमरेमे हजामत बनाते भैयासे कही गई थी, पर 'स्कूलवालो' कहकर जो प्रच्छन्न व्यग मेरे ऊपर किया गया था——उसे समझनेमे अधिक कठिनाई नही थी।

भैया वहीसे गरजे, "तुम मेरे ऊपर अर्जेंट हुक्म क्यो चलाती हो, पासमे बैठा है नवल, उससे कह दो, लकडी भी नही ला सकेगा, इतना तो वच्चा नही है।"

"ले आऊँगा भैया मै", मैने धीरेसे कह दिया।

खाना खाया, बिना चुपडी या नामकी चुपडी तीन रोटियाँ और शेष चावल, दाल जिसमे पानी अलग दाल अलग और शेष मसाला अलग।

"जल्दीमे है भैया। अब तो जैसा है वैसा खा लो", भाभीने रोटी सेकते हुए व्यस्त स्वरसे कहा।"

जैसे ही उठनेको था भाभी वोली, "नवल, उधर आते वक्त शामको तरकारी लेता अइयो भइया जरा।"

मैने कहा "अच्छा"।

आते समय मै सेम लेता आया भाभीने पूछा, "ले आये। कितनी है ?"

"आध सेर।" मैने कहा,

"पैसे ? ....पैसे तो तुमने दे दिये होगे, कितने हुए ?"

"आठ आने" मैने कहा।

"तो फिर दे दूँगी भइया, इस वक्त है नही।"

"दे दीजिये, कोई जल्दी नही है।"

लकडी मै टालपर मजदूरके सिरपर लदवा लाया। मजदूरको देखते ही भाभीने नाक सिकोडी। खाटकी पाटीपर पैर रखकर खडे हुए घुटनेपर कलाई रखकर भैया घडी उतार रहे थे उनकी ओर देखकर धीरेसे बोली, "मजदूर आया है।"

"दिमाग है लड़के के", भैयाने कहा।

बात मैने सुन ली, जैसे हृदयके कोमलतम भागपर दहकता हुआ अगारा रखकर किसीने दवा दिया हो, हृदयके स्तर—स्तरको जलाता हुआ वह घुसा जा रहा हो। पीडा, जलन, मचलन, बेचैनी जैसे सभी कुसमुसाकर रह गई।

"आ गई लकडी ?" भाभीका स्वर आश्चर्यजनक रूपसे मृदुल था, "मै राह ही देख रही थी तुम्हारी, कितनी है ?"

"ढाई रुपयेकी मनभर, चार आने मजदूरके", मै और भी अधिक सकुचित हो गया।

"अच्छा भैया, हाँ, पैसे अपने भैयाजीके पाससे ले जाओ, मेरे पास तो है नही, ओर देखो क्या कह रही थी मै, हॉ जरा बैठो यहाँ।"

मै उनकी खाटपर नीचेकी ओर बैठ गया। "देखो तुम समझते हो घर गिरस्ती है। हमारे यहाँ कोई खजाना थोडे ही गडा है।" और बहुत अधिक मुलायम शब्दोमे उन्होने कहा। "देखो भैया बुरा तो मानना मत, सौ रुपया तुम्हारे भैयाकी तनख्वाह है, अब उसमे तुम आठ-आठ दस-दस आनेका साग ले आओगे तो कैसे चलेगा ? कितने दिन चलेगा ?"

मैं सब समझ रहा था, उस दिन अपने कमरेमे जाकर मेरी रुलाई अपने आप बाहर फूट पडी, उस दिन मुझे अपनी असहायताका अनुभव हुआ। मैं मना रहा था कोई दैवी वज्र मेरे ऊपर आ गिरे और मेरी गर्दन कटकर दूर जा पडे। मैं इच्छा कर रहा था—किसी भी प्रकार मैं मर जाऊँ तो शायद इनके ऊपर कुछ प्रभाव पडे, इन्हे अनुभव तो हो कि एक असहाय बालकके प्रति अधिकसे अधिक निर्मम होनेसे उसके हृदयको कितना दुख पहुँचा, शायद मेरे मर जानेका कारण जानकर इन्हे कुछ पछतावा हो। खानेमे जो 'दुभात' की जा रही थी उसे मैं देख रहा था, लेकिन मैं चुप रहता। करूँ भी तो क्या, सोचता यो चुपचाप कबतक चलता जायेगा।

और धीरेसे खिसककर साग, भाजी, लकडी, मिर्च-मसाले सब बाजारसे लानेका काम मेरे ऊपर आ पडा। दूसरा महीना प्रारम्भ हो रहा था, सोचा था परिश्रम करके परीक्षामे अच्छासे अच्छा स्थान पानेका प्रयत्न करूँगा। पर सुबह उठता पाँच बजे, नित्य-कर्मसे निवृत होकर कसरत करता और फिर ठडे पानीसे नहा लेता, मै चाहता था भाभीके ऊपर मैं कमसे कम अपना बोझा डालूँ। इसके लिए मैं कष्ट सहनेके लिए तैयार था, ठिठुरता हुआ भी ठडे पानीसे नहा लेता तब पढने बैठता, नाश्ता करने जाना भी छोड दिया क्योकि चार-पाँच बार जानेपर भाभीने बताया कि अब रातको खाना ही नही बचता और उस समय लौटनेमे मैं ग्लानिसे गड-सा जाता, फिर मैंने जाना ही छोड दिया। नहाकर भूख लगती तो खाली पानी पी लेता, जाडेमे ठिठुरते हुए बडी प्रबल इच्छा होती कि काश, एक कप चाय होती। रसोईमें भैयाके लिए बननेवाली चायके प्याले खनकते हुए मुझे सुनाई देते, पर उधरकी ओर देखने तकका साहस नही करता। भाभी अपना एक कप रख लेती थी। उदय इला भैयाके साथ ही पी लेते थे। मैं अपने पुराने ओवरकोटमे दाँत कटकटाता हुआ ज्योमेट्रीकी कोई थ्यॉरम समझनेका असफल प्रयत्न करता। रोकनेपर भी ध्यान खनकते प्यालोकी तरफ ही चला जाता था। दस बजे जैसे तैसे निगलकर मैं स्कूल

पहुँच जाता, सन्ध्याको साग-तरकारी, मसाला या बाजारका सौदा। एक घटे उदय या इलाको पढाना, फिर रात हो जाती थी। केवल तीन बोतल मिट्टीका तेल मिलता है उससे मै पढूँ या घरमे उजाला हो, यह समस्या थी। यह मेरी दिनचर्या थी, दूसरे महीनेका पहिला हफ्ता मुझे यहाँ आये हो चला था। इसके अतिरिक्त कुछ और नई बाते भी मुझे दिखाई देने लगी थी।

जब मै खाना खाने बैठता भाभी बहुधा कहती "लो राशन खत्म हो गया। महीनेमे अभी बारह दिन पडे है कैसे होगा, अभी बीस रुपयेका मँगाया था, पन्द्रह रुपयेके घीमेसे आधा पाव बचा है, नवल तू झूठ मानेगा। ले देख, न कुछ खाते दिखाई दे न पीते, न जाने किधर चला जाय सब, रुपया जाता दिखाई देवे पर चीज आती दिखाई नही देती।" फिर धीरेसे हँसकर कहती, "तुझसे इतना भी सुख नही है कि कभी पन्द्रहवे दिन जाकर शुद्ध घी ले आवे, चाचीजी (अम्मा) बडे सस्तेमे निपट रही है।" दुबारा फिर धीरेसे हँस देती,—जैसे बातके प्रभावको कम कर रही हो।

आप समझते है मै इन सब बातोका मतलब नही जानता, नही ऐसी बात नही हैं। मै सब अनुभव करता देखता और निर्बलके बल राम कहकर चुप हो जाता। अम्माकी बात सोच-सोचकर आज मेरा रोआँ-रोआँ कातर हो उठा, कैसे उनके दिन कटते होगे? मेरी आँखोमे आँसू आ गये, इच्छा हो रही थी कठ फाडकर स्वतन्त्रतापूर्वक रो लूँ, मेरी छातीपर इतना बोझ, मस्तिष्कमे इतना तनाव आ गया था कि बिना इसके ठीक होता ही नही दिखाई देता था।

खाना खाते समय मेरे साथ उदय बैठता था। पेट भरा होने या न जाने किस कारण, जब मै अपनी भूखको शान्त करता होता तो वह छोटे-छोटे टुकडे लेकर चबाया करता, खेला करता। एक दिन थोडी देर पश्चात् ही भाभी बोली, "क्यो रे उदय, क्या आज तेरे पेटमे कुआँ खुद गया है? खाये चला जा रहा ह कबसे। उठनेका नाम नही लेता, आखिर स्कूल

विस्कूल भी जाना है।" रोटीका कौर चवाता हुआ सहसा मेरा मुँह रुक गया, आज यह नई बात थी। बात किससे और क्यो कही गई है इसे मै समझ गया, मुझे लगा मुझे कै हो जायेगी।

"मै तुमसे नही कह रही नवल, कही तू अपने ऊपर ले जाये, फिर इन बच्चोकी तबियत खराब हो जाती है तो डाक्टरोको हमे ही भरना पडता है।" मुझे रुकता देखकर भाभीने स्वरमे मार्दव लानेका प्रयत्न किया।

"नही" मैने जैसे-तैसे मुखका कौर निगला। खाना खाकर जैसे ही उठा, भाभीने कहा—"नवल, राशन समाप्त हो गया है स्कूलसे आके ले आना"।

मैने कहा, 'अच्छा'।

परीक्षाके डेढ महीना या एक ही समझो रह गये थे। पढनेके नाममे बिल्कुल कोरा था, स्कूलमे मालूम हुआ कि कल टैस्ट है तो जैसे किसीने मेरी दम निकाल ली हो, विश्वास ही नही मुझे दृढ निश्चय था कि मै अनिवार्यत फेल हो जाऊँगा, आज मैने उदय और इलाको नही पढाया। आते ही किताव खोलकर पढना शुरू कर दिया।

भाभीने कहा "ले आया नवल।"

"अभी नही भाभी ले आऊँगा अभी", मैने कहा। भाभी चली गई, पुस्तकोमे मै डूव गया। सहसा भाभीकी बडबडाहट सुनी, "खानेके वक्त तो आकर जमके बैठ जायेगा सुवहसे ही राशनको कह रही हूँ तो नही लाया जा रहा, बोलो भरनेको कहाँसे दूँगी।" ऊपरसे नीचेतक मै जैसे सन्नसे रह गया, मेरे पिताजी मवेशीखानेमे मुन्शी थे सही, पर मै वडे लाड-प्यारसे पाला गया पुत्र था, गाँवमे मै कभी नही रहा। सदा शहरमे और अच्छी प्रकारसे रहता आया हूँ, ऐसे शब्द मैने शायद जीवनमे पहली वार सुने। जैसे हजारो काँटे शरीरमे किसीने घुसा दिये हो, मै उसी समय उठ गया। जानता था कि रातदिन भैयाके कान भरनेसे उनकी धारणा भी मेरे प्रति काफी खराव हो चुकी है। और अव भी भाभी इसीको यत्नशील है।

मैंने जाकर राशन-कार्ड मॉगा। रुपये और राशन-कार्ड मेरे हाथपर जोरसे रखते हुए उन्होने कहा "आके फिर गेहूँ पनचक्की पर ले जाना।"

टैस्टका ध्यान छोड कर मैने सब किया। उस दिन जैसे ही मै चारपाईपर लेटा, मनसे मेरी रुलाई फूट पडी, रातभर हिचकियोके मारे मेरे गलेकी नसे दुखने लगी, ऑखोमे दर्द होने लगा। आज मेरे पिताजी होते, ये भैया पिताजीके सामने कितना अपनत्व दिखाते थे, भाभी उनके सामने कैसा प्यार करती थी। मान लो मै कही भाग भी जाऊँ तो ये भैया भाभी अपने कठकी समस्त शक्ति लगाकर प्रचार करेगी, उसकी आदते ही ऐसी थी। हमारी भी फलानी चीज तभीसे गायव है। कल टैस्ट है फेल हो गये कही वोर्डके इम्तहानमे, तो निकम्मा कुदजहन और न जाने क्या-क्या कहनेको मिलेगा। कही वक्रोक्ति द्वारा कुएँ इत्यादिकी समता फिर न दी जावे इस कारण पेट भरके मै खाना नही खाता था, कही वोझ न सिद्ध होऊँ इसलिए खानेके सिवा कोई भी काम मै किसीसे नही कहता था, भाभी भैयाको जिसमे आपत्तिकी भावना भी हो, वह काम मै नही करता था। तव भी मेरी छातीपर यह विश्वास कोल्हू-सा जमा वैठा था कि मै वोझ हूँ। उस दिन रात भर मै खूब रोया।

दूसरे दिन कोर्सकी पुस्तके खोलकर वैठा तभी सुनाई दिया, "लो नवाव साहव तो दफ्तर खोलकर बैठ गये है, अव चक्कीसे आटा कौन लाये, अभी हाल छातीपर आ जायेगे कि खाना दो। मैने किसीको जनम भर खिलानेका ठेका थोडे ही लिया है। हमे कुछ मतलव नही जी, हमारी तरफसे चाहे जहाँ जाओ।" मैने सुना पुस्तके एक ओर फेक दी और खडा हो गया वहुत सधे सयत पगोसे भाभीके पास पहुँचा "क्या है भाभी ? दृढ स्वरसे मैने पूछा।"

"कुछ नही जी, मुझसे मत वोलो इस वखत तुम।"

"क्यो तव भी ?" कुछ आप आटा लानेको कह रही थी चक्कीसे

लेकिन इसके लिए इस तरह चीखने और वडवडानेकी क्या आवश्यकत है।" मेरा स्वर अनजाने ही क्रमश तेज हो गया।

"अच्छा तो ऐसे हम किसीसे कुछ कामको ही नही कहे, ऐसे तो भैया साफ बात है यहाँ तो गुजर नही हो सकती।" पूरी आँखे फाडकर पुतलिय नचाते हुए भाभीने हाथ मटकाये।

"तो वस मै भी साफ सुनना चाहता था", मैने उत्तेजनासे कहा।

"क्या है ?" तभी हाथमे अखवार लिये भैया कमरेसे निकले। दोनो को घूरते हुए तेज़ कठसे बोले "क्यो जी, क्या बात है नवल ?"

मेरी आँखे झुक गई सारी उत्तेजना अब वरस पडनेको मचल पडी। मेरे कठमे छातीसे उठती हुई रुलाई आ-आकर फँसने लगी।

"इधर आओ।" भैयाने उँगलीसे सकेत किया, आज्ञा दी—"इधर आओ क्या कह रहा हूँ नही सुना अच्छा।" और तड़ाक् ! मुझे लगा मेरा सिर अपने स्थानपर घूम गया, आँखोके आगे तिरमिरे नाच उठे।

"सूअर, वदमाश, पाजी, अभीसे इतना घमड, वोलनेकी तमीज नही, निकल जाओ यहाँसे, यहाँ जगह नही है, फिर घरमे घुसा तो हन्टरोके मारे खाल उधेड लूँगा।" और उन्होने मेरी गर्दनको पूरी शक्तिसे भीचकर अपनी सारी ताकतसे मुझे वाहर धक्का दे दिया।

[२]

एक दिन वह था,

और एक आजका दिन है,

आज मै राशनिग मे इन्क्वायरीइन्सपेक्टर हूँ। काफी तनख्वाह मिलती है, दो एक टच्यूशन है, अच्छा विजली-नलदार मकान है, अम्मा और अरुणा-को मैने यही वुला लिया है, एम० ए०की तैयारी कर रहा हूँ फिर कही निश्चित रूपसे प्रोफेसर हो जाऊँगा। हम लोग काफी सुखी है, किन्तु पाँच वर्ष पहिलेकी वे बाते मै प्रयत्न करनेपर भी नही भुला पाता, अवकाश पाते ही नाच उठती है। और कभी जव मै उनकी शृखला मिलानेकी कोशिश

करता हूँ तो आश्चर्य और गर्वसे मेरी साँसे बोझिल हो जाती है, क्या मुझ-जैसे भावुक लडकेने ही यह सब किया ।

वह दिन मुझे याद है। दिन छिप रहा था और अँधेरा नगरपर छाने लगा था। रातको मृत-स्तब्ध हो जानेके लिए नगरका कोलाहल विशेष रूपसे ऊँचा हो गया था। आज मे स्कूल नही जा सका। अपनी उस मकडीके जालो कूडे और धूलसे भरी अँधेरी कोठरीको खोलकर टूटी खाटपर जोरसे मै जा पडा। आँसूका बाँध मेरी छातीको फोडकर आँखोसे बरसने लगा। उस दिन मैने रुलाईको रोकनेका प्रयत्न नही किया। मैने निश्चित-सा कर लिया, जितना भी मै रो सकूँगा आज ही रो लूँगा। मेरी हार्दिक इच्छा हो रही थी आँखोसे आँसुओके स्थानपर खून बहने लगे, मृत्युकी निविड मूर्च्छना मेरे ऊपर आने लगे और धीरेसे चेतना-हीन अवस्थामे ही अनजाने मेरे प्राण निकल जाये। ओह ! कितना अच्छा हो, पन्द्रह मिनिट रो चुकनेके पश्चात् मेरी रुलाई थमने लगी। फिर सोचता मेरे मर जानेपर अम्मा और अरुणाकी क्या हालत होगी, और उस हालतको सोचे बिना मे पूरे वेगसे फिर रोने लगा। फिर कुछ चुप होकर सोचता अब मै आगे क्या करूँगा, अनाथ हूँ, पढने रोटी खानेको रुपया कहाँसे आवेगा ? फिर वही दुर्निवार रुलाई, यही क्रम सन्ध्याके पाँच बजेतक चलता रहा। जीवनमे इतना अधिक मे कभी नही रोया। बडे-बडे अनाथ महापुरुषोकी जीवनियाँ मेरी आँखोके सम्मुख आती,पर फिर मुझे स्वीकार करना पडता कि उनका समय दूसरा होगा। उनके समयमे उदारता, थोडी दया ममता अवश्य ही ससारमे होगी।

दिन छिपेके लगभग मै उठा, सारा मुँह लाल हो रहा था, आँखोमे जड लालिमा जसे स्थिर हो गई थी। गले और कनपटीकी सारी नसे खिचकर तन गई थी। आँखोकी लाल और नीली शिराये आँखोमे फूलकर फैल गई थी। भूखके मारे मेरा सारा शरीर टूटा पड रहा था, मेरी इच्छा हो रही थी उस समय किसीकी भी जूठन ही होती।

मैंने अपनी कमीज और नेकर उतारकर रख दी, वही एक ओर टँगे धूल भरे फटे-फटाये पुराने छोटे कमीज पाजामेको मैंने पहन लिया। खूँटी नीची होनेके कारण जगह-जगहसे उन्हे चूहोने भी काट दिया था। कोठरीमे प्रकाश नही था। मैं बाहर आया, मुझे मालूम था मेरे सारे शरीर और सिरमे धूल भरी है, इसलिए सडकपर आनेकी मेरी हिम्मत नही पड रही थी, सोचता था कही किसीने देख लिया तो? भूखके मारे मेरे मुँहका सारा रस सूख गया था। मुझे स्पष्ट अनुभव होने लगा कि पेटसे उठकर आगकी लपटो जैसी कोई चीज मेरे हृदयको जलाती हुई कठतक चली जा रही है। पुस्तकोमे पढी हुई जठराग्निको मैंने तव सत्य जाना।

किधर जा रहा हूँ, खाना प्राप्त करनेका साधन क्या है बिना इन बातोके विषयमे तनिक भी सोचे निरुद्देश विक्षिप्त-सा चला जा रहा था, जव भी मुझे अनुभव होता कि कोई मुझे देख रहा है तो मैं सिकुडकर अपनेमे समा जाना चाहता, उस दिन आवारोकी भाँति मैं रातके साढे ग्यारह बजेतक घूमता ही रहा, बाजार, गली, सडक, होटल, रैस्टोरेन्ट, रिफ्रैशमेन्ट हाउस, तन्दूर, भोजनालय, सभीके सामने मैं गया पर लाख इच्छा करते हुए भी किसीसे एक टुकडातक न माँग सका। कभी-कभी किसी मिठाईकी दूकानके सामने किसीको आते देखकर मैं सोचता 'अगर मैं इसके हाथसे मिठाईका दोना छीनकर भाग जाऊँ तो वह मुझे पकड थोडे ही सकेगा', दो-एक बार ऐसा करनेका निश्चय भी किया पर पास जाते ही मेरा सारा निश्चय अदृश्य हो जाता। मेरी भूख और भी बढ गई थी, अब मैंने दृढ निश्चय कर लिया कि दूकानसे ही कोई चीज उठाकर मैं पूरी शक्तिसे एक ओर भागूँगा। मैं बढा, मिठाइयोकी थालियाँ क्रमश सजाकर पहाड-सा चिने हुए, दूकानदार एक ओर वैठा पैसे गिन रहा था। दूसरी ओरसे भाग जानेका अच्छा मौका था, चुपचाप मैं उसी ओर चला।

"ए लडके!" तभी किसीने वुलाया। मैं काँप उठा। वक्स रखे हुए

एक सज्जन खडे थे, सूटेड बूटेड। उन्होने फिर बुलाया "ऐ लडके" इस बार मेरी समझमे आया कि मुझे ही बुलाया जा रहा है। मै रुका।

"स्टेशन तक ले चलेगा। चल आठ आने देगे।" उन्होने बक्सकी ओर सकेत किया, फिर घडी देखी।

सकोच और लज्जाका ज्वार मेरे अन्दर फूट पडा। मै खडा रह गया।

"चल, जल्दी चल, बारह आने सही। सन्दूक ज्यादा भारी नही है।" जल्दी मचाते हुए वे बोले, "खडा क्यो है, उठा इसे।"

मै धीरेसे खिसका, जैसे किसीने धक्का देकर बढाया। मेरे सन्दूकके पास पहुँचनेसे पहिले ही उन्होने मेरे उठानेके लिए सन्दूकको एक ओरसे उठा दिया। अब मैने धीरेसे उठाकर सन्दूक ऊपर रख लिया। मेरे हाथ काँप रहे थे। सन्दूक अधिक भारी नही था, कठिनाईसे एक मन, तो भी मेरे पैर डगमगा रहे थे। चलते हुए मुझे अनुभव हुआ कि आज जाडा तेज़ है और मेरे सारे रोगटे खडे हुए जा रहे है। मुझे लग रहा था कि पानीकी सतहकी भाँति पृथ्वी अपने स्थानपर हिल रही है। एक-एक पाँव सँभालकर मै रख रहा था।

स्टेशन पहुँचे। गाडी तैयार खडी थी। स्टेशनके प्रकाशमे मेरा सारा शरीर जैसे अत्यधिक अव्यवस्थित हो उठा, जैसे प्रकाशकी एक-एक किरण मेरे शरीरमे मृत्यु-किरण बनकर रक्त सोखने लगी। मुझे लगता प्रत्येक आदमी मुझे देख रहा है और उसकी पैनी दृष्टि मेरे शरीरमे घुसी चली जा रही है, इतनी तीव्रतासे कि पीडाधिक्यके कारण मै अपने आपको सँभाल नही पा रहा था और जब ही मुझे ध्यान आता कि मुझे घूरती हुई दृष्टियोमे कोई परिचित दृष्टि भी हो सकती है तो जैसे मेरे शरीरका सारा रक्त कोई अदृश्य सत्ता सोख लेती। मै विवश-सा होने लगता। तीन फर्लांगके इस मार्गमे मेरे पैरोका डगमगाना एक क्षणको भी नही रुका। आठ-दस बार मुझे अनुभव हुआ कि मेरे सिरका सन्दूक गिर पडेगा, मै खुद गिर पड़ूँगा।

प्लेट-फार्मपर लगी हुई गाडीके इन्टर क्लासमे मैने वक्स लगा दिया वे सज्जन सीटपर बैठकर सारे डिब्बेका निरीक्षण करने लगे। मै थोड़ी देर खडा रहा, फिर घिसटते-से पगोसे चल दिया।

"अरे ए लडके, ओ लडके तुम्हारे पैसे।" तभी उन्होने पुकारा, मै रुक गया, सोचा लौटूँ या नही। कठिनाईसे थोडा आगे वढकर खडा हो गया, वे खुद उतरकर वाहर आ गये। दो दुअन्नियाँ और एक अठन्नी उन्होने मेरी ओर वढाई। मुझे लगा मेरे हाथोमेसे विद्युद्धारा सचरित हो उठी है। जैसे किसीने हाथ बाँध दिया है। सामान उठाकर लानेमे भी इतना संकोच नही लगा था।

"ले जल्दी। खडा क्या सोच रहा है, ठीक है एक वक्सके वारह आने कम नही है, रात है इसलिए इतने भी दे रहा हूँ।" और जल्दीसे मेरे हाथमे पैसे रखकर वे गाडीमे जा बैठे, तभी प्लेट-फार्मपर गूँजती हुई गार्डकी सीटीसे मै चौका।

स्टेशनसे वाहर निकलते ही चार आनेकी ताजी कचौरियाँ मैने खाई, तब जाकर मुझे लगा शायद इस रात मुझे भूख नही सतायेगी। अँधेरी सूनी कोठरीमे धूलसे भरी हुई खाटपर मै पडकर कब सो गया यह नही मालूम, बस एक स्वप्न मुझे उस रात दिखाई दिया, मैं बैठा हुआ सोच रहा हूँ कि मेरा भविष्य जीवन किस प्रकार कटेगा?

सुबह उठते ही कोठरीकी सफाई की, किताव-कापियाँ सब भैयाके घरपर थी। मैने भी सोच लिया था कि मर जाऊँगा पर वहाँ नही जाऊँगा। एक आनेका एक छोटा-सा घडा लिया। उसे पीनेको भर लिया शेष पैसोंके भुने हुए चने और गुड ले आया। तब वडा झिझकता-सा अपने अच्छे कपडे पहनकर स्कूल गया। वहाँ अपने साथीकी पुस्तकोसे पढा।

आज सन्ध्याको थोडे-से चने और गुड खाकर मै स्वय ही गन्दे कपडे वदलकर स्टेशन जा पहुँचा। कलका सकोच परिस्थितियोकी विषमतापर विचार करनेपर स्वय ही कम हो गया था। चार-पाँच बिस्तर-वक्स उठानेपर

आज एक रुपया मिला। दो घंटे मैने परिश्रम किया। अपनी कमाईपर ग्लानि, सकोच, क्षोभ और प्रसन्नताका अनुभव करता हुआ जब मै लौटनेको हुआ तो वहाँके एक कुलीने मेरे पास आकर कहा "देख वे लडके, कलको यहाँ आया तो कान उखाड लिये जायेगे। साले यहाँ चले आते है। ऐसा है तो यहाँ नाम क्यो नही लिखा लेता।"

कुलीसे गाली सुनकर मै स्तब्ध रह गया। इच्छा हुई रुपयेको इसके मुँहपर दे मारूँ। पर मै स्तम्भित-सा खडा ही रहा केवल, कुली चला गया। मै सोचता हुआ चला आया। एक दिया और तेल आज मै ले आया, सोच लिया कलसे स्टेशन जाऊँगा ही नही, मोटर-स्टैन्ड भी तो जगह है या फिर ताँगा शेडपर।

और इस प्रकार मेरी परीक्षाएँ पास आती चली गई। दिन छिपे ही गन्दे फटे कपडे पहिनकर मजदूरी करने निकल पडता। इस वार मैने कच्चे चने लाकर रख लिये, रातको भिगो देता, सुवह नमक मिर्च मिलाकर खा लेता। यह मेरा नाश्ता था। सन्ध्याको स्वय ही दो मोटी-सी रोटी वना लेता और चार पैसेका अचार ले आता।

परीक्षा हुई, पर मै गाँव जानेका साहस नही कर सका। भैया और भाभीसे अपने कुपुत्रके गायव होनेका समाचार सुनकर उन दोनो माँ वेटीका क्या हाल होगा, सोचनेसे ही मेरे हृदयको कोई आरेसे चीरने लगता। पर उस दिन मै वास्तवमे आश्चर्यसे जड रह गया, जव देखा, प्रात काल ही अम्मा और अरुणा मेरी कोठरीके दरवाजेपर खडी है। मुझे विश्वास नही हुआ। अम्मा मुझे देखते ही आकर लिपट गई, फूट-फूटकर रो उठी। पर मै नही रो सका। एक भी आँसू मेरी आँखोमे नही आया। उमडते हुए ज्वारको दाँत भीचकर मैने दवा लिया। अरुणा दूसरी ओर मुँह करके ऊँचे मकानोको देखने लगी। अम्मा रोती रही, पर मै पत्थर वना रहा। मैने अरुणासे कहा "भीतर आ जाओ, अरुणा।'

और उस दिन वडी देरतक घरकी, गाँवकी वाते होती रही। अम्माने

कई बार भैयाकी बात कही, पर मैने न तो तनिक भी उत्सुकता दिखाई और न इस विषयमे बात की। मै बडा सयत गम्भीर होकर बात कर रहा था। पचपन रुपये मैने जमा कर लिये थे। भविष्यका कार्यक्रम सोचते हुए मै अरुणा और अम्माके लिए अन्य प्रबन्ध करता रहा। उसी दिन आठ रुपये महीनेपर उस कोठरीके बगलवाली कोठरी भी मैने ले ली। अम्माके आनेपर मुझे प्रसन्नता नही हुई, सही, पर दुख हुआ ऐसा मै आज भी नही कह सकता। केवल एक सान्त्वना-सी मिली। कुछ सामान अम्मा साथ ले ही आई थी।

रातको अरुणा मेरे पास आकर बैठ गई। पास ही दिया जल रहा था। पुस्तकसे सिर उठाकर मैने उसकी आँखोमे देखा।

"तुम आये क्यो नही भैया" बडे स्नेहसे उसने मेरा हाथ पकड लिया। मुझे लगा उसकी आँखे तरल हो गई। इच्छा हुई अपनी सारी कथा इस निश्छल बहिनके सामने कह दूँ। आँखोमे, आज दिनभरमे पहली बार आँसू भर आये। रुँधे कठसे कहा, "क्या करता ?" वह थोडी देर मेरी ओर देखती रही, फिर शायद मुझसे छिपाकर उसने धीरेसे साँस खीचकर कहा, "भैयाके पाससे क्यो चले आये ?"

मुझे लगा, स्नेहके इस भारको मै सँभाल नही सकूँगा। मेरे शरीरका रोआँ-रोआँ सरस आर्द्रतासे काँप उठा। आँखोसे चुपचाप आँसू ढुलक पडे। कितना अन्तर था, उस दिनके और आजके आँसुओमे, वे तीखे तीव्र तिक्त, कटु और विषाक्त, ये सरस स्नेह-सिक्त और पुलकाकुल!

उस दिन बडी रात तक मै उसे भैया-भाभीका हाल बताता रहा। भैया द्वारा गाँव पहुँचाई गई अपने घरसे भाग जानेकी कथा सुनता रहा। थकी होनेके कारण अम्मा सो गई थी।

मैने ट्यूशन किये। अम्मा और अरुणासे छिपकर अपने फटे कपडोका प्रयोग किया। टाइपिस्टका काम किया और तब चार वर्षोमे बी० ए० किया। कभी-कभी अम्मा कही पीस बना आती।

आज मै इन्क्वायरी इन्सपेक्टर हूँ। दो टयूशन है काफी पड जाता है। अच्छा मकान है। एक नौकर लडका है अम्मा और अरुणा यही है।

आज जब मै घर आया तो वडा प्रसन्न था। दूसरा या तीसरा महीना मुझे यहाँ आये समाप्त हो चुका था। वेतन लिये हुए मै अपनी नई चमचमाती साइकिलपर चला आ रहा था। तभी दूरसे देखा। मेरे घरके सामनेसे कोई ताँगा सडकपर चला गया। अपने कमरेमे जैसे ही वैठा, पुलकित पगोसे अरुणा भी कमरेमे आ गई। वह भी आज विशेष प्रसन्न थी। सहज हँसी उसके अधरोसे फटी पडती थी। आते ही पूछा "आ गये ? आप नाश्ता सवके साथ करेगे या यही लाऊँ ?"

"सबके साथ कौन ?" मैने उत्सुकतासे उसके मुँहकी ओर देखा। आते समय दिखाई देनेवाला ताँगा मुझे याद आ गया।

"अरे, आपको नही मालूम ?" अरुणाने कहा, "भैया-भाभी आये हुए है।"

"भैया !" मै गम्भीर हो गया, अरुणाके प्रफुल्लित मुखको देखकर मेरे मुँहपर जो हँसी थी वह तिरोहित हो गई।

"हाँ, भाभी तो आपकी वडी याद कर रही है, जवसे आई कई वार पूछ चुकी है, वता रही थी, रोज याद कर लेती थी, अम्माके सामने रो पडी। वह तो वैसे ही कहनेमे वुरा मान गया, क्या भैया भाभीको इतना भी अधिकार नही है ? चलो भैया वही सव नाश्ता करेगे।" अरुणाने मेरा हाथ पकड लिया।

मेरा मुँह गम्भीरतर होता चला गया, मै चुप हो गया, अरुणाकी वातका मैने कोई उत्तर नही दिया। सोचता रहा।

मुझे चुप निश्चेष्ट देखकर अरुणा थोडी देर पश्चात् कुटिलतासे मुस्कराके मेरे निकट मुह लाकर जैसे किसी गूढ रहस्यका उद्घाटन कर रही हो, वोली, "और .. और भैया, भाभी तैयार कर आये है, फोटो तो सच इतनी अच्छी है, भैया . "

मुझे कुछ भी नही सुनाई दे रहा था, किन्तु अरुणाका यहाँ रहना

न जाने क्यो असह्य लगता जा रहा था। मै एकान्त चाह रहा था, "अरुणा मै यही नाश्ता करूँगा यही ले आओ।" निरुत्साहित और अशत कातर स्वरसे मैंने अरुणासे अनुरोध किया।

थोडी देर वह मुझे आश्चर्यसे देखती रही फिर धीरे-धीरे चली गई, शायद भैया भाभीको यही बुलाने या नाश्ता लाने।

उसके जाते ही मै उठकर खडा हो गया। कमरेसे निकलकर पौलीमें आ गया। पौलीमे अब भी दो चमडेके सूटकेस एक टीनका बक्स रखे थे। मै देखता रहा। मेरे अन्दर इस समय क्या हो रहा था मै नही कह सकता, जैसे किसी बडे कारखानेका सारा कोलाहल पुजीभूत होकर सिरमे भर गया हो। सयत और दृढ पग मैंने सामानकी ओर बढाये। बहुत गभीरतासे बिस्तरके पास जाकर खडा हो गया, झुका और बिस्तरको झटकेसे उठा लिया। अब मुझे आश्चर्य है इतना भारी बिस्तर मैंने कैसी सरलतासे उठा लिया। एकाध बार हिलाया फिर जोरसे बरामदेके बाहर फेंक दिया।

"अरे भैया।" घूमकर देखा तो अरुणा एक हाथमे गिलास और दूसरेमे नाश्तेकी तश्तरी लिये देख रही थी। उसकी आँखे आश्चर्यसे जैसे बाहर निकली पड रही हो।

एकदम सिर उठाकर मैंने चमडेका सूट केस उठाया, पहिलेसे ज़ोरसे उसे भी बाहर फ़ेंक दिया। उसका पिछला हिस्सा टूट गया और कपडे इधर-उधर फैल गये।

"भाभी" अरुणा जोरसे चिल्लाई।

शीघ्रतासे मैंने टीनका बक्स उठाया, "कौन, अरे नवल, क्या है?" भैया मेरी ओर दौडे। झूलते हुए बक्सेको जोरसे फेंककर मै गरजा, "मेरे घरमे जगह नही है!"

कमरेमे घुसकर मैंने ज़ोरसे किवाड बन्द कर लिये।

× × ×

दूसरे दिन दातौन करते समय मैंने सुना, हमारे पडौसी एक वृद्धने

निचले होठ और मसूडोके बीचमे बडे सभालकर बनाई हुई तम्बाकू रखते हुए अपने घनिष्ट मित्र न्यौला पडितसे आँखे मटकाकर बडी गम्भी-रतासे कहा, "देखो ये आजकलके लडके है। पाँच सालमे भैया मिलने आया तो सामान निकालकर फेक दिया। ठहरने नही दिया। खास भैया। कलयुग है, क्या कहे।"

वे नरभक्षी !

नव-विवाहके अवसरपर तुम्हारा अनुरोध टालना अशोभन है, लेकिन जब तुम मास खानेका मुझसे इतना आग्रह कर रही हो तो मुझे बचपनकी एक घटना याद आ रही है। उस समय मुझे मास खानेका बडा चाव था। माताजी धार्मिक विचारोकी थी, मना करती, पर मै पिताजीके साथ बैठ ही जाता। उस दिन नौकरने मेरे सामने ही बडे सुन्दर छोटे-से बकरीके बच्चेको काटा। उस समय एक बार इच्छा हुई, काश, यह इस प्रकार न कटकर मुझे खेलनेको मिल जाता, खूब हाथ फेर-फेरकर मैं खेलता---कितना चिकना प्यारा-सा था! किन्तु उसी समय मुलायम मासके स्वादका ध्यान आया। मै सब कुछ भूल गया। मेरे मुँहमे रह-रहकर पानी आ जाता। बवर्ची (क्योकि वह ब्राह्मण नहीं था) न जाने कब तरकारी तैयार करेगा। कई बार मै उसके पास गया। सारे वाता-वरणमे उत्तेजक मादक सुगन्धि व्याप्त थी। जितनी भी बार मै उसके पास गया मेरी भूख तेजसे तेज होती गई। बवर्ची बार-बार कहता---"बाबूजी, अभी देर है।" चौथी या पाँचवी बार मुझसे नही रहा गया। उसका हाथ पकडकर पृथिवीपर पैर पटकते हुए मै मचलने लगा---"तुम मुझे प्लेटमे कच्चा ही रख दो।" जितना ही वह मना करता, मुझे जिद आ रही थी। मै रोने और उसका हाथ काटने लगा---"मुझे तो अभी दो!"

"क्या है? क्यो रो रहा है? उसे छोडता है कि नही।" तभी माताजीका तेज स्वर सुनाई दिया। मै सहम गया, फिर भी हाथ नही छोडा।

"माताजी (मेम साहब सम्बोधन उन्हे पसन्द नही था) जिद पड रहे है जबसे, गोश्त कच्चा ही रख दे।" बवर्चीने कह दिया।

"बडा गोश्त खानेवाला आया, छोड उसे।" और माताजीने मेरा हाथ पकडकर जोरसे झटक दिया, डाँट लगाई—"बिना गोश्तके खाना ही नही उतरता लाट साहबके गलेके नीचे।" मै आहत-अभिमान रोने लगा। माताजीने दो तमाचे खीचकर जडे गालोपर—"चल उधर, खबरदार जो कभी गोश्त-ओश्तका नाम लिया।" और मुझे कमरेकी तरफ धकेल दिया। वे एक ओर चली गई। मुट्ठी आँखोमे मसलता-रोता मै वही खडा रहा। तभी बवर्ची आया—"बाबू, बस बन गया जरा-सी देर है।" वह चुप कराने मेरे पास आया। मैने उसका हाथ बुरी तरह झटक दिया और दुगुने वेगसे रोता हुआ भीतर कमरेमे भाग गया। एक ओर कमरेमे घर-भरके बिस्तर रक्खे थे। मै उन्हीपर लेटकर धीरे-धीरे सिसक-सिसककर रोता रहा।

माताजीको क्या पडी सा'ब हम कुछ भी खाते रहे, और, यह बवर्चीका बच्चा? इसे तो किसी दिन ऐसी ईट फिराकर मारूँगा कि खोपडी खिल जायेगी। न जाने कितनी देर मै रोता रहा। तभी पासवाले बँगलेमे रहनेवाला समवयस्क लडका मुझे खोजता हुआ आ गया। उसके स्वास्थ्यके कारण सब लोग उसे 'मैण्डो' कहते थे। मुझे देखते ही बोला—"तुम यहाँ लेटे हो, देखो कितनी नावे जीजीसे बनवाकर मै ले आया हूँ। नहरपर चलो, वहाँ बहायेगे।" और उसने दूसरे हाथवाला डिब्बा खोला। मै धीरेसे उठा। कमीजसे मुँह पोछा और चल दिया उसके साथ। सोच लिया, खूब देरमे लौटूँगा, तभी माताजीको पता चलेगा।

हम दोनो बँगलेसे बाहर आ गये। घरसे कोई दो फर्लांगपर नहर थी। दोनो चुपचाप चल दिये। दोपहरका समय हो गया था। भूख अब मेरी शायद मर चुकी थी। नहरके किनारेपर घने पेड लगे हुए थे, छोटा-सा बगीचा भी था। हम दोनो किनारेकी हरी घासपर आकर बैठ गये। मैण्डोने डिब्बा खोला और छोटी कागजकी नाव निकाल-निकाल घासपर रखने लगा। मै उन्हे खोल-खोलकर तैयार करने लगा। हम दोनो

तल्लीन थे। सहसा पीछे कुछ खडखडाहट हुई। मैंने सिर घुमाकर देखा—ओफ! मेरी ऊपरकी साँस ऊपर और नीचेकी नीचे रह गई। खूब जोरसे चीख पडनेको मन हुआ, पर भीतरसे उठी हुई चीख गलेमें इस बुरी तरह फँस गई कि कुछ देरतक लगा साँस आयेगी ही नही! एक बहुत बडा आदमी बगीचेसे निकलकर हमारी ओर आ रहा था—इतना बड़ा कि सारे जीवनमें मैंने उसकी कल्पना भी नहीं की। कोई पच्चीस-तीस फीटका वह रहा होगा। बगीचेके आमके पेडोके बराबर वह ऊँचा था।

एक बार एक मन्दिरमें खूब बडा-सा नगाडा-सा देखा था उस जैसा उसका मुँह, खूब बडी घनी काली मूँछे, खूब बडे-बडे और तगडे हाथ-पैर। डरके मारे मैं उसकी आँखे देख ही नही सका। रामलीलामें बने कागजके रावणकी याद मुझे आ गई। मैं उसकी ओर अधिक देखनेका साहस नही कर सका। दोनो हाथोसे मुँह ढँककर वही पृथिवीसे चिमट गया, मालूम नही सैण्डोने क्या किया।

तभी किसी बडी भारी मोटी-सी चीजने मेरी बाँह पकडकर मुझे उठा लिया। मैंने आँखे खोली जरा-सी, देखा उस भयानक 'दानव'ने अपना हाथ बढाकर मुझे बाँहसे उठा लिया था। दूसरे हाथसे उसने सैण्डोको पकड रखा था। फिर हमें झुलाता हुआ वह एक ओर चल दिया। मेरा मस्तिष्क बिलकुल भाव-शून्य हो गया था। मुझे आश्चर्य है उस समय मेरा 'हार्टफेल' क्यो नही हो गया। मेरी बाँह जैसे उखडी जा रही थी। पीडाके मारे मेरा अग-अंग तडप रहा था। चाहनेपर भी चीख नही निकल पा रही थी—मैं रो नही पा रहा था। भीतर ही भीतर इच्छा होती एक बार रो लूँ—चीख लूँ, तो शायद शान्ति मिल जाये। उस समय मुझे अनुभव हुआ कि पीडामें रोना और चीखना कितना शान्तिदायक है। धीरे-धीरे मैं चेतना-शून्य हो गया। मुर्गोंकी तरह वह हमें ले चला।

धीरे-धीरे जब मुझे होश हुआ तो मुझे लगा मैं पृथ्वीपर पडा हूँ। आँखे खोली, पर तभी जैसे दहकती सलाखोके डरसे फिर बन्द कर ली।

उसी एक दृष्टिमे मैने जो कुछ भी देखा वह वर्णनातीत है---बीचमे काफी बडे-बडे लक्कड जलाकर आग जलाई हुई थी उसके चारो ओर चार या पॉच वे वडे-वडे दानव बैठे हुए थे।

सबसे पहिले मेरी दृष्टि जिसपर पडी वह एक स्त्री थी। कपडे वे सब हम लोगोकी ही भॉति पहिने हुए थे। शायद उन भयानक दैत्योके मध्य वह सुन्दरी रही हो, पर मुझे तो उनका भीमाकार देखकर ही एक ऐसे दुर्निवार आतकने आच्छन्न कर लिया कि मेरा मन और मस्तिष्क बिल्कुल जड-निष्क्रिय हो गये और शायद यह अवस्था लाभदायक ही रही। बाते वे हम लोगोकी ही भाषामे कर रहे थे। न चाहनेपर भी गरम और पिघलते सीसेकी भॉति वे बाते मेरे कानोमे पहुँचती हुई नसोका रक्त जमाये दे रही थी। आश्चर्य है उस समय एक-एक शब्द जैसे मेरी समझमे आता हुआ मेरी पसलियोमे हथौडेकी चोट कर रहा था। वे बाते जिनकी उस आयुमे मैं कल्पना भी नही कर सकता था, आजतक मुझे ज्योकी त्यो याद है। आज उस बातको सोचता हूँ तो लगता है शायद मैं सिन्दबाद जहाजीके युगमे पहुँच गया था, चौथे या पॉचवे सफरमे जब वह और उसके साथी एक ऐसे ही दैत्यके पल्ले पड गये थे। अब तो झुँझलाहट होती है कि वैसी ही कोई छूटनेकी तरकीब मुझे याद क्यो नही आई। गुलीवरने भी अपनी यात्रामे ऐसे ही दैत्योका वर्णन किया हे। आस्कर वाइल्डने बालकोको प्यार करनेवाले एक दैत्यकी बात लिखी है, पर वे सभी दयालु थे। 'दास्तान अमीर हम्ज़ा'मे साहिब कुरान अमीर हम्ज़ा खुद ऐसे दैत्योसे लडता फिरा था। वहॉ ऐसे फन्देमे पडनेका सवाल ही नही था। आज वे सब बाते याद आती है। खैर, मेरी क्रिया-शक्ति उस समय तो जैसे बिलकुल ही मर गई थी। मैंने अनुभव किया मेरे पैरपर किसीका पैर रक्खा है, शायद वह सैण्डोका रहा हो। पहिले तो उनकी बाते तनिक भी समझमे नही आई, केवल जैसे 'माइक' लगाकर कोई चीखता हो, ऐसे स्वर कानोको फाडे डालते थे, पर

जब उनका अभ्यास हो गया तो लगा उन लोगोमे अच्छी खासी वहस छिडी है—

"अभीतक वे लोग आये नही है, भोजके समय तक शायद देर हो जायेगी।" आवाज उस स्त्रीकी-सी लगी। कुछ रुककर वह बोली—"भगवान् करे उन्हे कोई भी न मिले, न जाने इन बेचारोको तुम कहाँसे पकड लाये हो।"

"भगवान् करे!" किसी पुरुष-कण्ठकी विद्रूपभरी वाणी सुनाई दी—"देख लेना अभी लिये आ रहे होगे दो चारको! आज तो सचमुच बडा मजा आयेगा। वह तो कहो, अचानक मै नहरपर जा निकला, ये दोनो न जाने क्या खेल रहे थे।" और उसने विजयका अट्टहास किया।

"भई, इसके साथ पीनेका मामला जरूर होना चाहिये।" किसी तीसरे कण्ठने कहा।

"अरे सा'ब, खूब है पीनेकी आप चिन्ता क्यो करते है! और बहुत बढिया है पीनेको।"

तभी मैने अनुभव किया, मेरे पाँवपर रक्खा हुआ पाँव कुछ हिला और फिर हट गया। मुझे लगा जैसे कोई उठकर भागा बडी जोरसे। इच्छा हुई कि गर्दन घुमाकर देखूँ!

"अरे वो भागा एक तो—सामनेसे ही।" और एक दैत्यने गर्दन घुमाकर देखा, अपनी पलकोके कमसे कम खुले भागमेसे मैने झाँका। देखनेके साथ ही वह उधर लपका। उठकर कितना लम्बा हो गया था—ओफ! कुछ ही क्षण बाद वह लौटा, मैने देखा एक हाथसे खिलौनोकी भाँति गर्दन पकडे हुए वह सैण्डोको उठाये ला रहा था। सैण्डोका मुँह लाल हो गया था, आँखे निकली पड रही थी और वह बुरी तरह छटपटा रहा था। वह दैत्य अपने स्थानपर बैठ गया—मैने तनिक-सी पलके खोलकर देखा।

"सामनेसे ही भागता है।" उस दैत्यने सैण्डोको अपने सामने रख लिया।

"लाओ देखे, कमजोर है या बलवान्।" उसके पासवालेने कहा और सैण्डोके दोनो कान पकडकर जमीनसे ऊँचा उठा दिया। वही झुलाने लगा जैसे हम कभी-कभी पिल्लोको करते है। सैण्डोके मुँहसे एक चीख निकल गई और उसकी आँखोसे आँसू निकलने लगे।

"अरे-अरे रहने दो, च्च्-च्च् यह क्या करते हो।" उस स्त्रीने हाथसे रोका और मुँह दूसरी ओर घुमा लिया।

"रहने दो, क्यो तग करते हो उस बेचारेको।" एक दूसरा दैत्य बोला।

उसने सैण्डोको पृथ्वीपर रख दिया। बोला—"यह तो फिर भाग जायेगा।"

"अरे साहब, भागेगा कैसे।" और पहिलेवाले दैत्यने उसका हाथ और दाहिना पैर दोनो हाथोसे पकडकर पतली-सी लकडीकी तरह 'खट्'से तोड दिया। मेरे मुँहसे बडे जोरकी चीख निकल गई और सारा शरीर जैसे बिजलीके 'करन्ट'से सन्ना उठा। तबतक उसने सैण्डोका दूसरा पाँव भी घुटनेसे तोड दिया, फिर बडे विश्वाससे हँसकर बोला—"भागेगा कैसे।" मुझे अनुभव हुआ कि कुछ क्षणको मैं बिल्कुल सज्ञा-शून्य-सा हो गया था।

मेरे मस्तिष्कमे एकदम एक खरगोशका चित्र आ गया। एक दिन सडकके नीचेकी छोटी-सी पुलियामे हमने उसे घेर लिया था। कई लडके थे। बडी कठिनाईसे जब वह पकडा गया, तो भागने लगा, तब हममेसे एक बडेसे लडकेने ठीक इसी भाँति बडी आसानीसे उसके चारो पैर ककडी-की तरह तोड दिये थे। पैर तोड दिये जानेके पश्चात् एक जीवित प्राणीके कष्टका अनुभव मुझे आज हुआ और अब यह अनुभव मेरी रग-रगमे सहस्रो शूलोकी भाँति छिदने लगा! बेचारा सेण्डो! शायद वह रोते-रोते बेहोश हो गया था! उसके मुँहसे झाग-से निकलने लगे थे।

"ओफ हो! तुम लोग बडे निर्दय हो।" उस स्त्रीने गहरी साँस लेकर कहा—"भविष्यसे डरो,—यह भी कोई खाना है!"

"तुम्हारी यही बात तो रानी, हमे अच्छी नही लगती, हमेशा वही

धर्म-कर्मकी बात।" एक दैत्य बोला—"अपना-अपना खाना है, आजतक कोई भी मासके बिना रहा है ?"

"सभीके प्राण होते हैं—वेदना होती है।" उस स्त्रीने कहा—"अपना-सा ही सबको समझना चाहिये—भगवान्से डरो तुम लोग!"

"ये सब घिसी-घिसाई बाते है। शेर-चीते सब यो ही खाकर रहते है एक दूसरेको। वहाँ नही रोकने जाता उन्हे कोई! और अब तो यह भी सिद्ध हो चुका है कि वनस्पतिमे भी प्राण है।"

"लेकिन उन्हे खाये बिना काम नही चल सकता!" स्त्री बोली।

"यही बात हमारे साथ है, तुमने खाया ही तो नही है। एक दिन खा लोगी न गोश्त, तो यह सारे तर्क भूल जाओगी!"

"यही बात हमारे साथ नही है।" वह पुरुष बोला, जो बहुधा चुप बैठा था और जिसने सैण्डोके कान पकडकर उठानेसे मना किया था—"शेर और चीतोके दाँत-जीभसे मालूम होता है कि वे गोश्तखोर है, लेकिन हमारा शारीरिक गठन यह नही कहता। रही वनस्पतियोकी बात सो यदि उन्हे कलम नही किया जाया करे तो वे धीरे-धीरे स्वय नष्ट हो जाया करे! ऐसा नही हुआ कि कोई भी वनस्पति केवल मनुष्योके खानेसे समाप्त हो गई हो, लेकिन पशु और पक्षियोकी जातियाँ है, शिकारियोकी कृपासे जगलके जगल जिनसे खाली हो गये है।" थोडी देर वह चुप रहा कि उसकी बातका लोगोपर क्या प्रभाव पडा, पर उसके विरोधमे कोई कुछ नही बोला—"तुम्हारे ये भौतिकवादी कहते है कि हम निरन्तर उन्नति कर रहे है तथा मानव जातिका भविष्य और भी उज्ज्वल है, उसका स्वर्ण-काल पीछे मानना प्रतिक्रियावाद है, पराजयवाद है। लेकिन आदिम मनुष्यमे और तुममे क्या भेद है यह मेरी समझमे नही आता। मासके पश्चात् मनुष्यने अन्न खोजा, वह मासाहारीसे अन्नभोजी हुआ—यह उसका विकास था या ह्रास ? यदि यह विकास था तो तुम लोग क्यो उसे पुरानी ही अवस्थामे खीचे ले जाते हो ?"

"इसमे खीच ले जानेकी कोई बात नही है, हम अपनी आदिम प्रवृत्तियोसे छुटकारा नही पा सकते!" उनमेसे एक झुझला पडा।

"छुटकारा नही पा सकते, केवल इसीलिए उनको और भी फैलाया जाये। यह तो कोई तर्क नही है और यो अपनी आदिम प्रवृत्तियो—प्रकृति—और विवेकका सघर्ष ही मानवताकी विजय-विकास-गाथा है! यही सस्कृति है। सस्कृतिका अर्थ ही है आदिम स्वभावके सस्कारोका इतिहास। स्वच्छन्द मैथुन मनुष्यकी आदिम प्रवृत्ति थी, लेकिन ऐसी सारी प्रवृत्तियोको नियन्त्रित करनेपर ही तो हम उन्नति कर रहे है।" उसने अकाट्य तर्ककी तरह कहा।

तभी एक जैसे सारी बातोको मजाकमे उडाता हुआ बोला—"कुछ कहो यार, हम तो मास खाना छोडेगे नही।"

"मुझे आश्चर्य है तुम अपनेको कवि कहते हो। बताते हो कि तुम्हारा हृदय भावुकतासे छलकता आ रहा है, साध्यगगनकी सारी लालिमा उदासीके रूपमे तुम्हारी भावनाओमे उतर आई है और नीडकी ओर लौटते हुए पछियोकी आतुरता तुम विह्वल होकर बखानते हो। दिखाते हो कि जड और चेतन सभीमे तुम जीवनका स्पन्दन अनुभव कर रहे हो और तुम्हारे हृदयका अतुल अभाव प्यारके आँसुओ द्वारा द्रुमदल, पल्लव, बादल, चॉद, रश्मि, शमा, शबनम, उषा, लहर, रागिनी, ज्योत्स्ना, नैशकुन्तल, फूल, कलियॉ और सान्ध्य-तारक सभीपर बरस पडता है। उफ! यह सब कैसी विडम्बना है।"

"अरे किस जमानेकी बाते लेकर बैठ गये। म्यॉ, एक बार चख लो, फिर देखो तुम्हारी यह सब बाते कहॉ चली जाती है। मै अपनेको यदि कवि कहता हूँ तो इसका यह मतलब नही है कि मै खाना-पीना सभी छोड दूँ।"

मुझे आश्चर्य हुआ कि इन लोगोमे भी कवि है। जरा-सी पलक खोलकर देखी, बडे बडे लम्बे बाल पीछेकी ओर सँवारे हुए, दाढी मूँछ साफ! मनमे न जाने किसने कहा, यह कवि है!

"अरे छोडो भी इन झगडोको, न जाने कबसे गोश्त खाने न खानेपर बाते होती चली आ रही है, आजतक तो यह रुका नही है। सारा ससार खाता है, हमारे पुरखे खाते थे। लाओ इसे भून ले, वे लोग तो आते नही है अभी।" एक बोला।

"अच्छा लाओ।"

मै चौक गया। यह किसके विषयमे है। तभी देखा एकने सैण्डोकी बॉह पकडकर उठा ली। वह बेचारा एक बार जोरसे कराहा, उसके दोनो पैर टूटे हुए हिल उठे। उसका लाल चेहरा एकदम पीला पड गया था और पीडाकी एक ऐठन-सी बार-बार उसपर दौड जाती थी। एक दैत्यने उसके पैर पकड लिये एकने हाथ, फिर बीचमे जलती हुई लपटोके बीचमे ले गये! उफ! वह दृश्य आज भी जब याद करता हूँ, तो रोगटे खडे हो जाते है! हाथ और पैर दोनो ओरसे विवश बेचारा सैण्डो जलाया जा रहा था—जीवित। पहिले कुछ क्षण वह कितनी बुरी तरह चीख रहा था, कैसा असहाय-सा वह तडफडा रहा था। सारा शरीर उसका ऐठ-ऐठकर रह जाता था, लेकिन लपटे थी कि उसे खाये जा रही थी। मुझे कुछ क्षणोको लगा, जैसे मेरी सारी नसोका रक्त शीतल पानी बन गया है। उसकी एक-एक कराह—चीख-चिल्लाहट गरम-गरम कीले-सी मेरे मस्तिष्कमे ठोकती जा रही थी। धीरे-धीरे वह निश्चेष्ट हो गया।

एक बार हम कजरोके झोपडोकी ओर निकल गये थे। वहॉ देखा चूल्हेमे आग जलाकर एक जीवित कछुएको उन्होने उल्टा चूल्हेपर रख दिया था—कढाईकी तरह! कैसे हाथ-पॉव उस समय वह चला रहा था। हाथभर लम्बी उसकी गरदन निकल आई थी—हाथ-पॉव भी बाहर निकल आये थे।

सैण्डोका शरीर काला पडने लगा और एक असह्य उबकाई लाने-वाली चिरायँध सारे वायुमण्डलमे फैल-फैलकर मेरी सॉस रोकने लगी! भुनती हुई जीवित मछलियो, पख जलाई जाती हुई ज़िन्दा मुर्गियोकी तडपन व्याकुलता और विवशताकी चेष्टाएँ मेरे मस्तिष्कमे दहकते अगारे

भरने लगी। मै जैसे स्वय तडप रहा था और जैसे मुझे भी कोई भून रहा था ! कही इसके बाद मेरा नम्बर हो तो ? और आगे मै सोच नही सका, गला मेरा सूख गया था।

"तुम्हारा तो दावा यह है कि तुम दूसरेके हृदयके साथ तादात्म्य कर लेते हो।" वह पहिलेवाला बोला—"सुनते है तुम्हारी वह कविता जिसमे तुमने वाल्मीकिके क्रौंच पक्षीकी मर्म-व्यथाको छन्दोमे बाँधा है अमर रचना है।"

"क्यो ?—उसमे क्या अस्वाभाविकता है ?" तिनककर कवि बोला—वह सैण्डोके हाथ पकडकर बडे मनोयोगसे उसे भुनवा रहा था। थोडी देर चुप रहकर उसने कहा—"आप उस अवस्थाका अनुभव नही कर सकते। आज भी जब मै उस कविताको पढता हूँ तो रोने लगता हूँ। आह ! कितनी व्यथा है, कैसी वेदना है !"

"तो क्या वैसी ही पीर ये लोग अनुभव नही करते ? मै किसी धार्मिक दृष्टिकोणसे नही, 'रीजनेबुल' (तर्कपूर्ण) और मानवताके नाते कह रहा हूँ। पीडाको अनुभव करने और आत्म-रक्षाकी भावना प्रत्येक जीवमे है, जो सिद्ध करती है कि जीवनके प्रति वे इतने विरक्त नही है—न मोक्ष पानेको ऐसे व्याकुल।"

"अरे भई, कौन जानता है कि कौन क्या अनुभव करता है और मालूम नही ये लोग अनुभव करते भी है या नही। मेरा तो यह दावा है कि ये लोग कुछ भी अनुभव नही करते, यह सब हमारे मस्तिष्ककी उपज है।" झुँझलाकर कवि बोला और चिरायँध नाकमे पहुँचनेसे जो पानी उसके मुँहमे भर आया था, उसे सटकने लगा।

भूनकर उन्होने सैण्डोको अलग रखा। एक दैत्यने लकडीके बडे कुन्देके पीछे रक्खे बहुत बडे तलवार जैसे चाकूसे बडी-सी बोटी सैण्डोकी बगलमेसे काट ली, फिर एकदम मुँहमे रख गया। एक दुर्दमनीय वमनकी उत्तेजना मेरे भीतर उठी। फिर मै उस ओर देख नही सका। मैने बडा

साहस करके मुँह दूसरी ओर फेर लिया, पर उस ओर देखते ही मेरा भय चौगुना बढ गया। सामने बडा-सा पीपलका पेड था। न जाने कितनी लोमहर्षक वस्तुएँ वहाँ टँगी हुई थी। उलटे लडके, किसीका हाथ, पैर, कही सिर, सब इसी प्रकार सजा-सजाकर लटकाये गये थे—जैसे कसाईकी दूकानपर लटके हो। वह पीपल जैसे सारा आदमियोकी लाशोसे छाया हो।

"हलाल करोगे या झटका ?" तभी मैने सुना।

"झटकेमे क्या रक्खा है, हलाल करो।"

"मै कह नही सकता उस समय मेरी क्या अवस्था हो गई थी। न जाने कैसे मुझे मालूम पड गया कि वे मेरे ही लिए कह रहे थे। मेरा सारा शरीर एक बार जैसे 'सुन्न' पड गया। एक बार इच्छा हुई उठकर भाग जाऊँ; पर वह खरगोश, वह कछुआ, मछली, मुर्गी—जिनके मुँह सैण्डोकी तरहके थे, मेरे मस्तिष्कमे दौड गये। हे भगवन्, मुझे बचा, कुछ न कुछ शीघ्र होना चाहिये। इन लोगोका कुछ ठीक नही है। कैसे निर्दयी आदमी है ! बेचारेको जीवित जला डाला—मेरा क्या करेगे ?

तभी किसीने अचानक मेरी छातीपर जोरसे अपना वज्र-सा पाँव रख दिया। मैने देखा वह २० फुट ऊँची भयकर मूर्ति लम्बा छुरा लिये खडी थी ! एक क्षणको लगा उसका मुँह बकरीके बच्चेकी तरहका है, फिर लगा—नही वह बवर्चीसे अधिक मिलता है। सारी शक्ति लगाकर मैने प्रयत्न किया कि तडपकर छूट जाऊँ, किन्तु मुझसे हिला नही गया। आह, ये लोग मुझे भी अभी खा जायेगे। बडे भयकर दृढ निश्चयसे वह झुका, उसकी आँखोमे खून झलक उठा—वे मशाल-सी जल उठी ! उसका छुरा नीचे बढा, मै पूरे बलसे चीख पडना चाहता था, पर साँस नही निकल रही थी। मेरे शरीरके अणु-अणुमे ऐसी दुर्निवार छटपटाहट हो रही थी कि काश ! किसी प्रकार उसके पजेसे छूट पाता। उसका छुरा मेरी गर्दनकी ओर बढ रहा था। हे भगवन्, इसका हाथ एकदम टूट जाये। अभी यह मेरी गर्दन छुरेसे रेतेगा जैसे बकरेकी गर्दन रेतते है। उफ ! मेरे सारे शरीरमे

मोटे-मोटे रोगटे खडे हो गये थे ! एक क्षणमे मेरी आँखोके आगे दावतका दृश्य आ गया, जिसमे मेरा वडा स्वादिष्ट गोश्त वनाया गया है, लोग उँगलियाँ चाट-चाटकर खा रहे है, वोटियाँ मेरी आँखोमे नाच उठी, भुनता मसाला,—वोटियाँ, अभी ! छुरा मेरी गर्दनपर रख दिया गया था। अभी यह घूमने ही वाला है, मै विवश हूँ, असहाय हूँ ! सारी करुणा, सारी याचना, सारी दीनता अपनी आँखोमे भरकर मैने उस दैत्यकी आँखोमे देखा, पर वहाँ पत्थरकी भयकर क्रूर आँखे थी। मेरी आँखोमे पापाजी, माताजीका चित्र चमक उठा । छुरा एक वार जोरसे फिरा .. ओफ ! वह धार—वह पीडा, और उस समय मेरी पसलियाँ तोडकर छाती फाडकर एक भयकर चीख ज्वालामुखीके विस्फोटकी भाँति फूट पडी—मै अचेत !

एकदम देखा—माताजी, ववर्ची, पापाजी और न जाने कौन-कौन मेरे चारो ओर घवराये-से जमा थे और मै कमरेमे विस्तरोके ढेरके ऊपर पसीनेसे लथपथ पडा धीरे-धीरे सुवक रहा था !
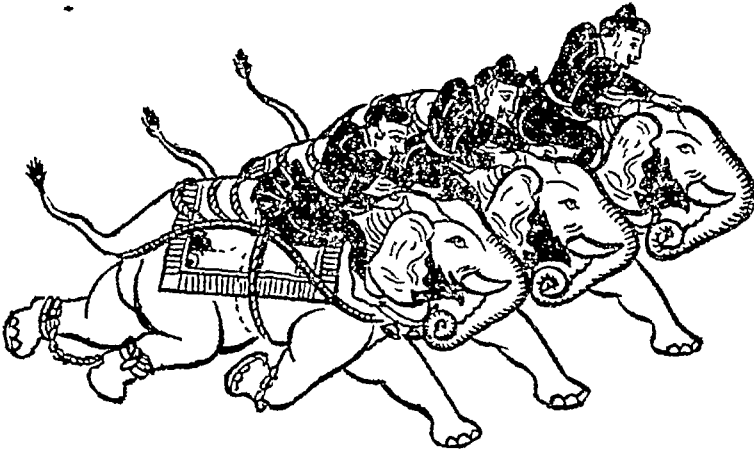
और मेरा प्रश्न सरल हो रहा है

ग्यारहके घंटे कोठीमे बज रहे है।

तो क्या मैं इसी समय उठकर चला जाऊँ? हॉ तुम्ही बताओ यह प्रतारणा यह प्रवचना चलेगी आखिर कितने दिन? मुझे चला जाना चाहिये।

इस सूनी रातमे मैं बिस्तरेपर बेचैनीसे करवटे बदल रहा हूँ। बडी व्यग्रताका अनुभव मुझे इस समय हो रहा है। कभी-कभी कुहनियोके सहारे उठकर बैठ जानेका प्रयत्न भी मैं करता हूँ। कोठीके भीतरवाले ऑगनमे वे लोग सोये होगे और यहाँ बाहरकी ओर मैं। कोठीके बरामदेमे रखी शीशेवाली मेज मुझे दिखाई देती है। धुँधली-सी एक ओर दूर नौकरो-की कोठरियाँ है। बाहर मेरी खाट और आसपास काफी स्थान छोडकर सामने फाटकतक पतली सडक, मेहदीकी पक्तियोसे घिरी चली गई है। कभी-कभी यह सब देख लेता हूँ।

लेकिन मेरी अपलक दृष्टि अब केवल आकाशपर ही स्थिर हो गई है। स्वच्छ सुन्दर पूर्ण चन्द्रमा पूर्वसे पश्चिमकी ओर बढ रहा है और गोडे हुए खेतकी तरह बादलोके टुकडे सारे आकाशको ढॉके हुए है। चॉद कभी दिखाई दे जाता है, कभी छिप जाता है। न जाने कबसे चॉद यह खेल खेल रहा है। वायुके परोपर बहे जाते झीने बादलोसे चॉदकी उज्ज्वल प्रतिच्छाया झॉकती है जैसे सिकुडनदार झीने पटको बहुत सधे हाथोसे कोई दीपकके ऊपरसे सरकाये।

पर आज यह सब रक्षाबन्धनके दिन देखनेको मेरा जी नही कर रहा। मैं व्याकुल हूँ। बार-बार सोचता हूँ चला जाऊँ?

अभी थोडी देर पहिले वह गई है, कैसी बेशर्मीसे वह कहकर गई,

मुझे शर्म लगती है तुम्हारे सामने दुहराते। वडे प्रेमका अभिनय करके इतराकर बोली थी—'भैया, मै अगर उधर सो जाऊँ तो बुरा नही मानोगे?" मै बुरा क्यो मानने लगा, बोलो? मेरी तरफसे तुम रातभर चक्कर और लगा लेती। फिर बोली "बात ऐसी है देखो, उन्हे मेरे बिना नीद नही आती और मुझे भी और हँस दी।" अरे नही आती तो मुझसे यह सब कहनेकी क्या जरूरत है, चली जाओ, तुम्हे रोकता कौन है?

और यही बात उस समय मुझे कैसी अच्छी लगी थी। कितने अनुरोधसे मै कहता—मेरे ऊपर विश्वास करो, मुझसे द्वैत न रखो, यह मत समझो कि मै दूसरा हूँ। हेम मै चाहता हूँ हमारे-तुम्हारे बीचमे यह लडकी-लडकेका भेद ही न रहे। बिल्कुल मुक्त निश्छल, निष्कपट हम दोनोको एक दूसरेके सामने आना चाहिये। तुम मुझसे साफ कहो जो कुछ तुम्हे कहना है। तुम यह भूल जाओ कि मै कोई दूसरा हूँ और तुम यह बात किसी लडकेसे कह रही हो। याद रखो, जैसे यह सब तुम स्वय मनमे ही कह रही हो। और तब भी मैने अनुभव किया कि वह मेरे सामने बिल्कुल खुल नही सकी हो। और एक दिन जब उसने स्वय ही बुलाकर मुझसे अपने विवाहके विषयमे पूछा कि क्या हो रहा है, वह महोदय कैसे है? उसके उस अन्धकार भरे भविष्यमे आखिर है क्या? इन सब बातोकी आशकाओसे भरा उसका हृदय जब मेरे कन्धेसे लगकर बाहर फफक पडा और मै उसे दृढ अचल रहनेकी सान्त्वना देता रहा, तब मेरा हृदय जैसे पुलक उठा था। एक नारी जिसे शरत् जैसे कलाकारोने गूढ रहस्यमय अगम्य न जाने क्या-क्या कहकर दुर्बोध बना दिया था, मेरे सामने अपना सारा हृदय खोलकर रखे दे रही है। मेरे मनमे बार-बार आता, एक स्त्री है जिसका हृदय मेरे सामने बिल्कुल खुला है, निरावरण है, लोग उसे समझते-समझते न जाने क्या कह मारते है। और फिर मेरे और उसके बीचमे कोई दुराव, कोई अन्तर नही रहा। हम भूल गये कि मै लडका

हूँ, वह लडकी। क्या बात उसे कहनी चाहिये, क्या मुझ नही। कमसे कम हमारे और उसके बीचमें कोई सीमा, कोई मर्यादा नही थी। हम दो घनिष्ठ मित्रोकी तरह थे।

लेकिन जब आज मुझे मालूम है उसी स्पष्टवादिताके कारण वह मुझसे यह कह सकी, फिर भी कैसी निर्लज्जता? आखिर मुझसे यह सब कहनेकी जरूरत? मालूम है अपने पतिको तुम बहुत प्यार करती हो, उसके बिना तुम्हे नीद नही आती। फिर मै क्या करूँ? उस सारे प्रेमको दो घटेतक बखानते हुए मेरी नीद, और नीदसे भी अधिक मन स्थिति खराब किये बिना क्या तुमसे रहा नही जा रहा था? सारे दिन तो टहलती रही, और अब आई है हमें निहाल करने!

और मैंने दाहिनी ओर करवट बदली। मुझे यहाँ आनेकी जरूरत ही क्या थी? यह बिना इससे राखी बँधवाये क्या मेरा काम नही चल रहा था? मूर्खता तो सारी मेरी ही है और मेरी ही क्यो सारे भाइयोकी है। राखी बँधवानेको ऐसे उत्सुक रहते है जैसे राखी नही विश्वका साम्राज्य वे इन्हे दिये डाल रही हो। अरे, जब तुम उनकी रक्षा करते थे तब समय और था तब रक्षाबन्धनका नाम भी सार्थक था। अब? अब वे तुम्हारी उलटी रक्षा करके रख दे, कहो तो खडा करके बेच दे। मै चला हिन्दुस्तानके दूसरे सिरेसे किसके लिए? चलो अपनी परम स्नेहशीला बहनसे राखी बँधवा आवे—तरह-तरहकी पुस्तके भेटमे देने। देख लिया अब? नौकरसे बुलवाया तो भागी-दौडी सी आई, माथेपर तिलक लगाया जैसे माथेपर झटकेसे स्विच दबा दिया हो। डोरा बाँधकर चली गई—अच्छी राखी भी नही।

"भैया, भेट मेरी रख लेना, जरा मेरी 'ननद' उनके राखी बाँध रही है मेरा वहाँ जाना जरूरी है।" हाँ जी, तुम्हारे बिना वे बाँधेगी कैसे। इन दिनो सारी पत्नियाँ ससुराल पहुँच तो जाती है कि उनके पतियोकी बहनें राखी बाँध रही है। भई, वे बडे आदमी है जब उनकी बहिन राखी बाँधे तुम्हे होना चाहिये वहाँ, दो कैमरामैन, दो-चार अखबारवाले—

इसके बिना रक्षाबन्धन ही कैसा ? और एक मैं हूँ सुबहसे ही किसीने बात भी नही पूछी। भेटकी जो पुस्तके लाया हूँ—सब रखी हुई है। किसीको लेनेका अवकाश है—न इच्छा। कोई सोनेकी या कुछ कीमती चीज होती। किताब क्या एक बार पढी और रख दी, कितना उथला हो गया है हमारा दृष्टिकोण

साढे ग्यारहका घटा न जाने कब बज गया है। अब तो बारहके बज रहे हैं, मेरी विचारधारा टूटती है। मै करवट बदलता हूँ।

तो क्या आज रातभर मुझे नीद नही आ सकेगी ? इस घटेपर इधर और उस घटेपर उधर करवट लेते ही सारी रात बीत जायेगी। घडीके पैण्डुलमकी तरह यह बात मेरे मस्तिष्कमे बज रही है, तो क्या मै उठ जाऊँ ? चल दूँ ? किसीको क्या मालूम होगा ? वैसे मालूम होकर होगा भी क्या ? अच्छा है बला टली। बला तो हूँ ही। अब जब सारे दिनकी घटनाओका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर रहा हूँ, तो यह स्पष्ट वास्तविकता कितनी शीघ्रतासे खुलती जा रही है कि मेरी यहाँ तनिक भी आवश्यकता नही है—मै बोझ हूँ। इस बातको मुझे समझ तो सुबह ही जाना चाहिये था, लेकिन प्रेम अन्धा होता है। अब जब वह उपेक्षाकी निर्मम ठोकर मारकर मेरे सुप्त विचार-तारोको झनझना गई है तब यह सत्य मेरी आँखोके सामने आया है। सुबह आठ बजे मेरी गाडी आती है। जैसे ही ताँगेसे उतरकर भीतर आया, देखा। देखते ही वहीसे बोली "ओ भइया, तुम ? कैसा अच्छा हुआ तुम आ गये।" और वैसे ही वह कैलेंडरकी तारीख बदलती रही। कितना निर्जीव भावना-विहीन स्वर था; पर मै था कि ध्यान नही दे पाया और अगली बातमे ही भूल गया—"यह बडा अच्छा हुआ, मै भी सोच रही थी, राखी किसके बाँधूँगी ?" जी हाँ, मेरे लिए तो आप दम छोडे दे रही थी न। ओह, स्त्री कितनी मायाविनी होती है !

मेरा मन ऊब गया है। एक क्षण भी ठहरनेकी इच्छा नही होती।

लेकिन अब कहाँ जाऊँगा ? गाडी चार बजे जाती है। स्टेशनपर पडा रहूँगा तबतक यही जो लेटा रहूँ। किसीको क्या मालूम ? ऐसी स्नेहशीला तो है नही कि देखने आएँगी भैयाको कोई कष्ट तो नही है . । सुबह देखेगी। एक बजे न सही, मै तीन बजे ही चला जाऊँगा। वहाँ भी कोई शान्ति नही मिली जाती। यही करवटे बदलूँ तबतक। लेकिन यह सब सोच-सोचकर मुझे आश्चर्य होता है। इतनी शीघ्र बदल कैसे गई ? यह आकस्मिक परिवर्तन है या उसका वास्तविक स्वरूप जो अब अवसर पाकर खुला है। एक समय वह था जब उसके असीम प्यारकी अजस्र वर्षामे भीगकर स्वत मेरे मनमे न जाने कितने गीत गूँज उठे थे। मै नाराज हो जाता था तो उससे अच्छी तरह खाना नही खाया जाता था। मुझे उस दिनकी याद है जब मेरे लिए वह अडतालीस घटे भूखी रही थी। दो दिनको बाहर गया था तो रोने लगी थी यह अठारह वर्षकी लडकी, "भैया तुम तो सब जगह घूमके चले आते हो—हमारा यहाँ मन नही लगता। वह सब क्या था ? उसकी सेवा, भूखा रहना, रूठना और जिस दिन भैयासे दो घटे मनकी बाते न कह सुन लेना, उस दिनको व्यर्थ समझना —क्या था वह सब ? छलना ? प्रवचना ? और उन्ही स्वप्नोकी माधुरीमे डूबता-उतराता अन्धा बना मै आगया हूँ यहाँ ! उफ ! करवटसे मुझसे लेटा नही जाता। इच्छा होती है उठकर बैठ जाऊँ। एक दुर्निवार तनाव अपनी शिराओमे मै अनुभव कर रहा हूँ।

विश्वास मानो, अनुभवकी बात कह रहा हूँ। इन लडकियोका विवाह जब अपनेसे बडे परिवारमे करो तो निश्चय रखो कि अब हमारा सम्बन्ध टूट रहा है। और ये लडकियाँ हैं कि इनके सारे हित, सारे स्वार्थ, सारे लाभ, सारे सत्य एक दिनमे उस अनजान जगह जा पहुँचते है और बाहरी या बीता हुआ सब झूठ हो जाता है।

उस समय मैने इससे प्रेरणा लेकर कितनी कहानियाँ लिखी थी, कितनी कविताएँ इसके व्यक्तित्वकी छाप लेकर मेरे निकट अमर बन गई है।

लेकिन वह कुछ नही, सब धोखा था, झूठ था। जाते ही पहिला काम होगा उन्हे फाड-फाडकर अग्निको समर्पित करना। क्षणिक आवेशमें जन्मी वस्तुका यही होना चाहिये।

हेम, विदा दो, मै जा रहा हूँ! तुम्हे मालूम भी न होगा कब मैं रेलमे चढ जाऊँगा। मालूम होनेकी आवश्यकता भी नही है। तुम्हारे सामने आनेको भी मन नही करता। ओ स्वार्थमयी, जब तुझे मेरी आवश्यकता थी मैंने तुम्हे सहारा दिया—अपने आपको तुम्हारे उठानेके लिए सीढी बना दिया। अब अपने पतिके साथ तुम सुखी रहो, यही कामना है। जब भी तुम्हे मेरी आवश्यकता हो मेरे पास आना, मेरा द्वार मुक्त है। मै जा रहा हूँ, बहुत कुछ लेकर उस सबको कैसे अभिव्यक्त करूँ? उपेक्षा और निराशाकी कटुतासे मेरी नसनस विषाक्त हो उठी है। अब अपने यथार्थ भावोको छिपानेकी कायरता मुझसे नही हो सकेगी। मै जा रहा हूँ, एक असीम वितृष्णा लेकर, एक उत्कट अमाप घृणा लेकर एक ऐसा क्षोभ, द्वन्द्व लेकर जो मेरे मनपर बोझ-सा जमकर बैठ गया है और मै कह नही पाता और जो मेरे खूनके कण-कणमे तीव्र पिघले सीसेकी भाँति फैला जा रहा है। जा रहा हूँ, अब तुमसे मिलनेकी कोशिश नही करूँगा, लहरमे बहते हुए कभी आ भिडे तो देखा जायेगा। उपवनकी सुरभिमे तुम वनके समीरको भूल जाना—भूल तो गई ही हो! मैं भी अब कभी तुम्हारा ध्यान करनेका प्रयत्न नही करूँगा। लेकिन उस घृणाको जो आज तुमने जगा दी है, निकालनेमे मै अपने आपको असमर्थ पा रहा हूँ। मालम नही इसका विस्फोट मेरी कलाकी किस-किस दिशामे होकर उसे विकृत करेगा। इतना विश्वास है हेम, अब तुम्हारी प्रेरणा लेकर मैं कुछ नही लिख सकता। यह यथार्थ है।

एक घटा मुझे हल्का सुनाई पड़ता है। मालूम नही एकका है साढे बारहका या डेढका। मै चौंककर सीधा लेट जाता हूँ। चाँदकी ओर देख रहा हूँ, जहाँ चाँदके ऊपरसे बादलोके टुकडे फिसले चले जा रहे है।

मेहँदीकी बौर गमक रही है, धरतीकी साँसे स्वप्नकी परियोकी तरह सुन-हली धूलमे खेलती है।

हिश्! क्या बेकारकी बाते सोचनेमे मै लगा हूँ। इन बातोका भी अन्त है। चाहे जितना सोचे चले जाओ इन्हे। इनमे अपना मस्तिष्क, खराब करना है। चाँद कितनी सुन्दरतासे चमक रहा है।

और अपने थके-माँदे मस्तिष्कको ताजा करने, विश्राम देने, अपनी एक कविता गुनगुनाने लगा हूँ। बडी भावुकतामे आकर मैने यह कविता लिखी थी। एक अद्भुत शान्ति मुझे इसे पढनेसे मिलती है—

मध्य निशाकी स्तब्ध सरित-तट
ज्योतित स्वर्णिम किरण डालपर
एक विहग बैठा गाता था!
जिसके मधुमय मदिर स्वरोकी
थपकी खाकर धीरे-धीरे
नीद हिडोला झूल रहा था!
और खो रही संज्ञहीन-सी, मन्त्रमुग्धसी
संसृति अवचेतन सपनोमे!
चाँद हँस रहा था सोनेकी तरणी-सा नीले सागरपर।

कविताके रसमे विभोर होकर मै सोचता हूँ ऐसे परमानन्दकी अनुभूति क्या कोई वैज्ञानिक कभी कर सकता है! कभी नही! उसे चाँदमें ऐसी मोहाच्छन्न रहस्यमयता कभी कल्पनामे भी नही दिखाई दे सकेगी। वे इसका सुन्दर रूप क्या जाने? उनके लिए तो पृथ्वीकी तरह वह भी एक स्थान है—जहाँ पहाड है, नदियाँ है, वन है, जीव-जन्तु है, मानव हैं और जो सूर्यके प्रकाशसे चमकता है। इसमे क्या सुन्दर? सौन्दर्यके स्थानपर वह जिज्ञासा और विश्लेषणकी अधिक वस्तु है।

क्या इन सब बातोको मै नही जानता? फिर जानबूझकर अपनेको धोखा देनेका प्रयत्न क्यो? क्यो, फिर चाँदमे यह रहस्यमयता, काल्प-

निकता और भावनाओका बलात् आरोप ? क्यो यह व्यर्थका तूमार और शब्दजाल ? इस भ्रमसे आनन्दकी प्रवृत्ति क्यो ? लेकिन हमे क्या ? यह वैज्ञानिकोका दृष्टिकोण है। वे वस्तुका काला रूप ही देखते है। उसकी कुरूपताका ही यान्त्रिक विश्लेषण करते है, निर्जीव। कलाकार इसके विपरीत है। वह उज्वल पक्ष देखता है। सौन्दर्य और महानतामें विश्वास करता है। विकृत यथार्थके प्रति उसकी आसक्ति नही है—वह उदात्त है।

और हठात् मै अनुभव करता हूँ कि प्रकाशका एक तीर विचारोकी कालिमाको वेधता हुआ चला जा रहा है—बढा जा रहा है, भीतर-गहरा ! फिर हेमके प्रति यह वैज्ञानिकोवाला विकृत यथार्थके विश्लेषणका दृष्टिकोण क्यो ?

और सारी बात मेरे सामने स्पष्ट हो रही है, प्रेम क्या है ? केवल अपनी भावनाओको प्यार करना, और उन भावनाओको उत्तेजित करनेवाले साधनको साध्य मानना। हेमके प्रति दृष्टिकोण ?—चाँदके प्रति वैज्ञानिकका दृष्टिकोण ? यदि विश्व-साहित्यसे चाँदका यह सुन्दर रूप निकाल लिया जाय तो शायद हजारो कविताएँ व्यर्थ हो जाएँ।

तो मै चला जाऊँ ? और प्रश्न मेरे सामने सरल हो रहा है।

हाँ हेम, मै जा रहा हूँ—लेकिन मेरा तेरे प्रति दृष्टिकोण
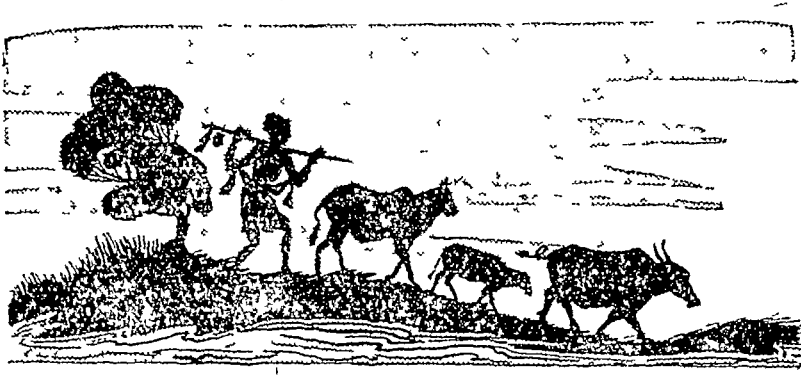
"जब कला मर गई थी........"

एक समयकी बात है कि एक राजकुमारी अपनी सखियो और दासियो-को लेकर अपने राज्यके सबसे सुन्दर वनमे सैर करने गई। ऋतु पावसकी थी और प्रकृति अपने यौवनपर थी। पृथ्वी लम्बी-लम्बी हरी घाससे हुलस रही थी। पेड जैसे फूल और पत्तियोके बाहुल्यसे लदकर बडे-बडे कुज बन गये थे। आकाशपर बादलोके हिडोले झूल रहे थे।—जब वे सब रमणियाँ उसमे रगबिरगे पुष्पो और तितलियोकी भाँति थिरक उठी तो वनका सौन्दर्य शतगुणित हो उठा। राजकुमारीने कमलोसे भरे हुए तालाबमे जल-केलि की, वह मजरित आम्रडालपर झूला डालकर झूली और उन सघन कुजोमे आँख-मिचौनी खेली। पक्षी चहचहा रहे थे, कोयल कूक उठती थी और मोर नाचते थे। खेलते-खेलते राजकुमारी वनके प्रगाढ तममे स्थित एक छोटी-सी लता-वल्लरियोसे लदी-खिली कुटीके सामने जाकर ठिठक गई। कुटीके किवाड बन्द थे। तभी पीछेसे उसकी और सहेलियाँ आ गई।

"दूरसे यह स्थान एक घना कुज-सा दिखाई देता है, यहाँ कौन रहता होगा ?" आश्चर्य, कौतूहल और जिज्ञासासे राजकुमारीने अपनी सहे-लियोसे पूछा, और स्वय द्वारपर धक्का देने आगे बढी।

तभी एक सहेलीने उसके सामने आकर कहा—"राजकुमारी, इसमे अपने राज्यके—और मै समझती हूँ इस समय समस्त आर्यावर्तके—सर्वश्रेष्ठ चित्रकार प्रमथ रहते है। न मालूम इस समय संसारकी किस श्रेष्ठ कृतिका निर्माण हो रहा होगा, मै प्रार्थना करूँगी किवाडोमे धक्का देकर आप उस तपस्वीकी साधना भग न करे।"

राजकुमारी रुक गई, पर आश्चर्यसे जैसे उसके नेत्र स्फीत हो उठे।

सर्वश्रेष्ठ चित्रकार इस विजनमे ! प्रमथकी प्रशंसा एक-दो नही सैकडो वार वह इधर-उधर सुन चुकी थी। जब तक कुटीके कपाट खुलेगे, वह आतुर प्रतीक्षा करेगी।

कुछ समय पश्चात् कुटीके कपाट हठात् खुले, और एक मानव मूर्ति झपटकर बाहर आई। एक बार फटे और करुण कंठसे चिल्लाई "भूख! भूख! भोजन!" और फिर मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडी। ये सब लोग/आश्चर्यचकित स्तब्ध, भीत-सी देखती रह गई। कुछ क्षण पश्चात् स्वस्थ हुई। उसके उपचारको दौडी। राजकुमारीने देखा, एक अत्यन्त सुन्दर युवा, कन्धेतक बिखरे हुए बाल, श्मश्रु, केवल धोती पहिने हुए, स्वर्णिम शरीर, सुन्दर मुख! राजकुमारीने देखा, और देखती रह गई। फिर जैसे चौंककर शुश्रूषाको दौडी। प्रमथने आँखे खोली, सचेत हुआ। उसे बडे स्नेहसे खाना खिलाया गया। तब कही जाकर वह स्वस्थ हुआ।

कृतज्ञताके भारसे झुककर उसने कहा—"किन शब्दोमे राजकुमारी, मैं आपका आभार प्रदर्शित कर सकूँगा, मै नही जानता! "

"नही चित्रकार, इसकी कोई आवश्यकता नही।" राजकुमारीने संकुचित होकर कहा। उसकी प्रलम्बित पलके नीचे झुक गई।

"आइये, राजकुमारी, मै आपको वह चित्र दिखाऊँ, जिसे पिछले सप्ताहसे निरन्तर भूखा रहकर, प्याससे तडपकर मै बना रहा हूँ। आज वह पूर्ण हुआ . पर आइये-आइये।" और आगे-आगे चित्रकार प्रमथने कुटीमे प्रवेश किया, पीछे-पीछे राजकुमारी, तब सहेलियाँ।

प्रवेश करते ही राजकुमारी जैसे, स्तम्भित, मन्त्रमुग्ध, चमत्कृत और विमूढ-सी खडी रह गई। सामने आयताकार पटल पर प्रायः अस्पष्ट प्रकाशमे जो चित्र अपनी सम्पूर्ण सौन्दर्य-ज्योतिसे झिलमिला रहा है और जिसने राजकुमारीके तन और मनको हठात् निश्चेष्ट विज-

चित्र बनाता आ रहा हूँ। प्रत्येक नूतन चित्र बनानेके पश्चात् मुझे लगता है, उसमे कही कमी है, अभाव है, कसर है ? और फिर नूतन उत्साहसे मै दूसरा बनाता हूँ---दृढ निश्चय करता हूँ कि दूसरे चित्रमे किसी प्रकारकी कमी नही होगी, पर हाय ! चित्र पूर्ण होते ही मुझे लगता है कि इसमे कुछ अभाव है, कमी है, और झुँझलाकर मै उसे एक ओर पटक देता हूँ। यह अभाव क्या है, कैसी मरीचिका है---मै समझ नही पाता।" और उसने कुटीमे एक ओर रखे चित्र-फलकोके ढेरको देखा।

"लेकिन चित्रकार, इस अभावको तुम समझोगे---एक दिन।"

"नही राजकुमारी नही,---कभी नही ! एक अभावकी पूर्तिका प्रयत्न नये अभावोका सृजन करता है। मै आज जब आँखे खोलकर अपने चारो ओर देखता हूँ, तो मुझे अनुभव होता है, इस अभावके लिए कितने अभावो-को मैने अपने चारो ओर जमा कर लिया है। राजकुमारी, मै आज सात दिनसे भूखा, न जाने कितने दिन मुझे भूखा रहना पडा है, इसीने मुझे भिक्षा माँगनेको विवश कर दिया है---ससारका सबसे बडा अभाव ? राजकुमारी, मुझे अपनी नित्यकी आवश्यकताओका अभाव है, मेरी कलामे अभाव है मेरे जीवनमे अभाव है ! विकट अभावका यह शून्य गह्वर आज अपनी समस्त विकराल दाढे खोले ! राजकुमारी, मै अकिंचन हूँ ।" और मुँहपर दोनो हाथ रखकर प्रमथ फूट-फूटकर हिचकियोमे सिसक पडा।

राजकुमारीने उसके सिरको अपने वक्षसे लगा लिया---"छि चित्र-कार, तुम दुर्बल !" चित्रकार जैसे दुगने जोरसे रो उठा। बडी देरमे प्रमथके हृदयका वेग थमा। वह सँभलकर बैठ गया और अन्यमनस्क-सा एक ओर देखने लगा।

राजकुमारीने सान्त्वना देते हुए मधुर स्वरमे कहा---"चित्रकार इतना तो मै फिर भी कहूँगी, भूख और पीडामे रहकर भी तुमने वह चित्र

और राजाकी आज्ञासे उपवनके मध्यमे वने मुन्दर भवनके एक कक्षमे उसने अपनी चित्रशाला वनाई। ससार भरके समस्त उपकरण उसके लिए वहाँ प्रस्तुत थे। सारे ससारसे निश्चिन्त होकर वह एक श्रेष्ठ चित्रके विषयमे मनन करने लगा। यह उपवन राजकुमारीका विशेष उपवन था। उसने चित्रकारको पूर्णत सन्तुष्ट करनेका प्रयास किया था। अच्छे-से-अच्छे भोजन जिनकी वह स्वप्नमे भी कल्पना नही कर सकता था। उसके तनिक-सा उन्मन होनेपर उसके चारो ओर कल्पनातीत वाद्ययन्त्रोकी स्वरलहरियाँ नूपुरकी तालपर झमक उठती और आँखोमे अथाह विस्मयका भाव भरे वह स्तब्ध बैठा पहिचाननेका प्रयत्न करता कि यह सब स्वप्न है, अथवा जागरण। राजकुमारी हाथमे हाथ दिये प्रात - काल नित्य ही उसे उसकी चित्रशाला तक पहुँचाने आती! फिर उस चित्रशालामे एकान्तमे बैठकर प्रमथ उस चित्रके विषयमे मनन करता। सन्ध्याके समय दासीके हाथो हल्के जलपानका सामान लिये, ओठोपर विश्व-विमोहिनी मुस्कानसे राजकुमारी नित्य उसका अभिनन्दन करती। एक दिन चित्रकारने वताया कि आज उसने वह चित्र वनाना प्रारम्भ कर दिया है।

उस दिन राजकुमारी वडी प्रसन्न होकर उसे चित्रशालाके द्वारतक पहुँचा गई। चलते समय उसने चित्रकारके हाथको वडे स्नेहसे दवाया। एक अलौकिक प्रेरणासे अनुप्राणित चित्रकारने कक्षमे प्रवेश किया। राजकुमारी वडी आकुल होकर सन्ध्याकी प्रतीक्षा करती रही। सन्ध्या-को स्वय जलपानका सामान उठाये वह चित्रशालाके द्वारपर आ खडी हुई। चित्रकार निकला। मुस्कराकर राजकुमारीने उसका स्वागत किया। वह खिल उठा, जैसे सारी थकावट मनसे दूर हो गई हो।

और नित्य यही क्रम चलने लगा।

एक दिन चित्रकारने कहा—"आज मेरे चित्रकी रूप-रेखा पूर्ण हो जायगी।"

समय वाता।

राजकुमारी नित्य पूछती, देखती प्रमथ नित्यप्रति उदास होता चला जा रहा है। वह स्वय चिन्तित थी—पूर्ण चित्र! पूर्ण चित्र!

एक वर्ष वीत गया।

झुँझलाकर कहा—"चित्रकार तुम कैसे जड हो गये हो।"

चित्रकार हँसा। फिर किसी गहनतम विचार-वीथिकामे जाकर खो गया—उदास और पीला मुख।

और एक दिन सारे राज्यमे कोलाहल मच गया, चित्रकार खो गया प्रमथ गायव है। राजाके चर खोजने निकले। राजकुमारी वन-उपवनमे भ्रान्त,- उन्मत्तकी भाँति खोजती फिरी—"ओ चित्रकार, ओ चित्रकार, तुम्हारा सर्वश्रेष्ठ चित्र कहाँ है?"

एक दिन राजकुमारीने देखा, एक पेडके नीचे एक मनुष्य वैठा खुरपेसे घास खोद रहा था। पास गई—"अरे चित्रकार प्रमथ।" विखरे वाल मैला शरीर। पागल राजकुमारी उस ओर दौडी—"चित्रकार।"

चित्रकार उठकर खडा हो गया, घूमा और कडककर वोला—"खवरदार राजकुमारी, मेरे पास मत आना।"

"तुम्हारा चित्र,—सर्वश्रेष्ठ कृति!" राजकुमारी होशमे नही थी।

"नही राजकुमारी, मेरी सर्वश्रेष्ठ कृति वे थी जो मैने अभाव और पीडा-मे वनाई थी—और वनाता चला गया। यह चित्र मेरी सर्वश्रेष्ठ कृति कभी नही है, जिसे एक वार वनाकर पूर्ण नही कर पाया। क्योकि तुमने मेरे अभावोको दूर कर दिया। उनकी पूर्तिकी खोजमे निरन्तर प्रयत्नशील मेरी कल्पनाके पख तोड दिये—मेरे कलाकारकी हत्या की। कला महलोमे नही पलती। अभावमे गति है, और गति कलाका प्राण है।"

वात वास्तवमे ऐसी ही है कि मुझसे छिपाई जाय तो मुझे कुछ भी आग्रह नही है। किन्तु जव मै सोचता हूँ तो दुख इस वातका होता है, कि तीन वर्षके निरन्तर सम्पर्कपर भी न तो तुम मुझपर इतना विश्वास कर सकी, और न इतना खुल सकी, जव कि शायद मेरे हृदयके अन्तर्तममे भी कोई ऐसा कण नही है, जिसे तुम न जानती हो। और क्या लिखूँ, आशा है तुम प्रसन्न होगी। समय मिले तो पत्रका उत्तर शीघ्र देना।

तुम्हारा—शैलेन्द्र

पत्र न० ३—

आदरणीय भैया,

आपका पत्र मिला। मै स्वय क्या लिखूँ, झिझक होती है। कभी लिखा नही। मुझे आपको अपनी कोई भी वात वतानेमे कभी भी आपत्ति नही रही। मेरी ओरसे आप ऐसा मत सोचा कीजिये। एक तो इस विषयमे स्वय मुझे नही मालूम कि वावूजी और माताजी क्या कर रहे है, दूसरे अभीतक मेरा विश्वास था कि विद्यार्थियोको इन वातोसे दूर रहना चाहिए। आप विश्वास रखिये, मालूम होते ही मै आपको अवश्य लिखूंगी।

पिछले तीन वर्षोकी वाते आप क्यो याद दिला देते है। मन उदास हो जाता है। यहाँ अव जीवन वडा नीरस और जड-सा लगता है। स्कूलमे मन लडकियोके साथ तो भी थोडा-वहुत वहल जाता है, वैसे माताजीका स्वभाव तो आप जानते ही है। इधर उनके स्वभावकी कटुता (कर्कशता) और भी वढ गई है। जव देखो किसी न किसीको पीटना, ताडना, अकेले वडवडाना। मै होती हूँ तो मेरे ऊपर सारा उवाल उतारती है। वोर्डकी परीक्षा है, न जाने कैसे होगा? भैया, कैसे थे वे दिन, आप तो अव प्रसन्न होगे। और कुछ लिखिये। हाँ, इतना मुझे मालूम है कि वातें तेजीसे हो रही है।

आपकी—हेम

नही है। जब आप इतना जोर दे रहे है तो मै अपने भविष्यके विषयमे सोचूँगी। किन्तु क्या सोचूँ—समझमे नही आता। सोचते ही अपने अज्ञात भविष्यके प्रति एक प्रकारकी विचित्र भय-मिश्रित जिज्ञासा सारे शरीरकी शिराओमे तरल सिहरन भरकर चमक उठती है। किन्तु जितना मैं यहाँ सुन रही हूँ उससे मुझे अपना भविष्य न जाने कैसा लगने लगता है। हाँ, एक बात मै आपको बताऊँ, जिनके लिए बाते हो रही है, उनका एक चित्र तथा कुछ परिचय-सा बाबूजीने मौसाजीके पास शायद सलाह लेने भेजा है। उसीसे आपको सब बाते मालूम हो जायँगी। तब हो सके तो कुछ सलाह दीजिये। मुझे अभी सब बाते ठीक मालूम नही हुई है, इसलिए नही लिख रही।

आपने मेरे विषयमे अविश्वासकी बाते लिखी है। भैया, ऐसा क्यो करते हो? मैने तुम्हारे अतिरिक्त किसीपर भी विश्वास नही किया। पत्र लिखो, पढाई कैसी चल रही है? पत्रका उत्तर दीजिये।

आपकी—हेम

पत्र न० ६—

प्रिय हेम,

बाबूजीके डेस्कमे रखी मैने सब चीजे देखी। वैसे मुझे मालूम तो पहिले हीसे माताजी इत्यादिके मुँहसे पड गया था कि वे सज्जन पूनाके निवासी है, और दूसरा विवाह है। किन्तु इससे और भी बाते मालूम हुई—शायद तुम्हे न मालूम हो, इसलिए लिख रहा हूँ। पूनाकी किसी कम्पनीके एजेण्टकी हैसियतमे वे बम्बई ही अक्सर रहते है। पहिली पत्नी अशिक्षित थी, इसलिए उन्हे छोड दिया। अब विश्वास दिलाते है कि उनके मनोनुकूल शिक्षित सभ्य लडकी मिल गई तो बम्बईमे ही कोई बँगला खरीद लेगे। कार इत्यादिकी तो कोई बात नही है। रुपयेकी कोई कमी नही है। फोटो देखनेसे उम्र उनकी चालीसके ऊपर लगती है। बैठनेका ढग और हाथकी सिगरेटकी पकड देखकर अपने मनोवैज्ञानिक

आई हूँ। जो एक वार पत्नीको छोड़ देता है, उसका कोई विश्वास नही है। न जाने किस समय वह क्या कर देगा। मेरी नाइन्थकी 'क्लासफेलो' ऊर्मिको तो आप जानते ही होगे। कई वार आपके सामने मेरे साथ आई भी थी, कितनी अच्छी लडकी थी। वेचारीके मस्तिष्कमे न जाने क्या हो गया है? उसकी वडी वहिनसे मालूम हुआ है जवसे उसका विवाह हुआ है तभीसे वह कुछ उन्मन-सी रहती है। फिर उसकी वडी वहिनसे और भी वाते मालूम हुई, जिनका साराश यह है कि उसके पति डाक्टर है। न जाने कैसे तिकडमी आदमी है। काफी रुपया लेकर विवाह करते है। छ महीने वीतते न वीतते उस वेचारी लडकीको न मालूम क्या वीमारी हो जाती है कि वह विक्षिप्त-सी होने लगती है। फिर स्वय उसकी चिकित्सा करते है, और तव वह वेचारी एक वर्षसे अधिक जीवित नही रहती। शायद ऊर्मि तीसरी है।

रही धनकी वात। जो कुछ भी आपने पत्रमे लिखा है उस सवको देखते हुए, कमसे कम मै अभीतक यह नही सोच सकती थी कि वावूजी भी ऑखोसे देखते हुए मुझे गड्ढेमे ढकेल सकते है। माताजीको जरूर कुछ धनका लालच हो सकता है। परन्तु कमसे कम वावूजीसे तो मै ऐसी आशा नही करती। मै मानती हूँ कि आजकी हर लडकी एक ऐसा स्वप्न पाले हुए है जिसमे अच्छा सजा-सजाया वॅगला है, कार है, मनोविनोदको रेडियो, वैडमिटन, और सोसाइटी है। एक फिल्मी एक्टर-सा प्यार करने-वाला पति है। कुछ अशोमे मै भी अपनेको इन स्वप्नोसे अलग नही पाती, पर एक वात मै आपसे पूछती हूँ—

मान लीजिये एक गाडीमे आपको दो पहिये लगाने है, तो क्या आप इसे उचित समझते है कि एक तो अपनी आधी उम्र भुगत चुका हो और दूसरा नया तथा कुछ छोटा हो? स्वास्थ्यपर तो मै अधिक जोर नही दे सकती, परन्तु कमसे कम मनुष्यका चरित्र, स्वभाव, विचारधारा तथा शिक्षाका होना अति आवश्यक है। हालाँ कि आजके समयमे विना धनके

अब और अधिक क्या लिखूँ। इन दिनो इसी झमेलेमे मेरे पढनेका बहुत समय नष्ट हो जाता है जिसे मे बिलकुल भी नही चाहती। एक बात मैं बिलकुल स्पष्ट लिख देना चाहती हूँ कि अगर उम्र और चरित्र ठीक हो और विद्या हो तो मै सब कुछ सहनेको तैयार हूँ, परन्तु इसे नही सहन कर सकती। पत्र किसीको दिखाइयेगा नही।

आपकी—हेम

पत्र न० ८—

प्रिय हेम,

पत्र तुम्हारा मिल गया था। काफी सोचनेका मसाला उसमे है। तुम इस वार मुझसे खुली हो यह देखकर प्रसन्नता होती है। माताजीकी कलकी बातोसे ज्ञात हुआ है कि शायद बाबूजी इस विषयमे अपनी स्वीकृति भेज चुके है। स्वय माताजीका कहना है कि शहरका 'इतना अच्छा धनी लडका मिलना कठिन ही नही असभव है।' तुम्हारे विचार इस विषयमे मुझे मालूम हो चुके है। आगे क्या होगा हेम ?

कभी-कभी मे सोचने लगता हूँ कि इन पुराने आदमियोकी दृष्टिमे क्या धन और खानदान ही सबसे बडी वस्तु है। लडके-लडकीका स्वयका अपना कोई अस्तित्व नही है ? हेम, न जाने कैसे एक प्रबल दुर्निवार विद्रोहकी भावना मेरे भीतर रह-रहकर मरोडे मार रही है। हममे तनिक भी बिना पूछे, क्या अधिकार है इन्हे, इस प्रकार हमारा जीवन नष्ट करनेका ? क्या जीवन ऐसी सस्ती वस्तु है कि वह यो जानबूझकर अनुमान और अटकलपर ही छोड दिया जाय ? हेम, मेरी हार्दिक इच्छा थी कि तुम जैसी रत्नको खूब देख समझकर, योग्य व्यक्तिको सौपा जाय—जहाँ तुम्हारा आदर हो सके। पर बात ऐसी नही दिखाई देती। न जाने कैसा अन्धकारमय मुझे तुम्हारा भविष्य दिखाई दे रहा है।

तुम जीवनको युद्धस्थल मानती हो, पर स्वय चुप रहना चाहती हो। अपनेको पूर्णतया भाग्यपर छोडकर—यह कैसी कायरता ? यह निराशा-

हेम, मुझे अपनी सहायता करने दो—मुझसे देखा नही जाता। स्पष्ट मना कर दो तुम, नही तो मुझे लिखो, मै आऊँगा अविलम्ब ! तुम मुझसे छिपाओ मत, झिझको मत, शायद मै विपत्तिके समय स्थिर रहनेकी प्रेरणा ही सिद्ध हो सकूँ।

पत्रका उत्तर बहुत शीघ्र देना, मै उत्कट प्रतीक्षामे हूँ।

तुम्हारा—शैलेन्द्र

पत्र न० ६—

आदरणीय भैया,

शायद जो कुछ भी होना था, सो हो चुका। मुझसे पूछनेकी किसीने तनिक भी आवश्यकता नही समझी। मै किसे दोष दूँ और वास्तवमे इसमे दोष किसीका भी नही हे, वह तो सब मेरा भाग्य है। और इसलिए विवश होकर जो कुछ कष्ट मेरे ऊपर पडेगा मै सहनेको तैयार हूँ। मै ऐसा मित्र चाहती थी जो मेरा पथप्रदर्शन कर सकता, मुझे मेरे कर्तव्य समझा सकता तथा अपने पथपर अग्रसर होनेमे कुछ सहायता दे सकता। यह मुझसे नही सहा जायगा, कि कोई तो अपने आदर्श-पथपर बढते-बढते, कठिनाइयाँ सहते-सहते भले ही मर जाय और कोई मजेमे मौज उडाये। खैर, प्रत्येक मनुष्य मरनेके लिए ही पैदा होता है चाहे वह आज हो या दो चार वर्ष पश्चात्। भैया ! तुम जानते हो—मेरा स्वास्थ्य मेरा साथ नही देता फिर जीवनके विषम सघर्ष ! मुझे लगता है दो चार वर्षसे अधिक मुझसे जीवित नही रहा जायगा।

साधारणत मनुष्यका स्वास्थ्य, चरित्र, स्वभाव, इत्यादि तो अच्छा ही होना चाहिए। फिर उसमे दया, प्रेम, उदारता इत्यादि गुणोका होना भी अत्यन्त आवश्यक है। विद्याका भण्डार धनके भण्डारसे अधिक हो। यही तो मनुष्यका चरित्र बनाती है। मद्य, मासने किसे नही ले डाला। मनुष्यमे साहस, बल तथा देश-जातिके लिए मरनेकी क्षमता होनी चाहिए। पर मुझे विश्वास है 'इन्टर फेल' उस मनुष्यमे

हृदय उबलकर धसक जाता है। मनुष्य इतना क्रूर भी हो सकता है। और भी उदाहरण हैं। बाबूजीके सामने सिर उठानेकी मेरी हिम्मत नही होती। ऐसे क्रूर मनुष्यसे भैया तुम क्यो आकर उलझते हो। मै मानती हूँ, वे आपके मौसाजी है। पर उनकी हठके आगे तुम कुछ न कर सकोगे। मुझपर जो भी बीते, बीतने दो। तुम क्यो व्यर्थमे अपना समय नष्ट करते हो। दुख ही तो हम स्त्रियोका जीवन है। गुप्तजीकी पक्तियाँ याद है ?

माताजीके साथ रोटी बनवाकर आई हू। पत्र लिखते समय बीच ही मे उन्होने मुझे उठा लिया था। बडा हगामा इसपर मचाया। कैसे पास होऊँगी भैया, इन्टरकी परीक्षाएँ हैं। घरके वातावरणमे तनिक भी शान्ति नही मिलती। अब यह सब सहा नही जाता। समझमे नही आता, क्या करूँ ? आगे और पीछे सारा जीवन मुझे सपना दिखाई देने लगा है। केवल आपका पत्र ही है जिसे पढकर शान्ति होती है, फिर भी उसे देखकर फूट-फूटकर रोनेको दिल चाहता है। ऐसा मन होता है, तुम्हारी गोदमे सिसक-सिसककर रो लूँ—जी भरकर, जैसे बच्चा अपनी माँकी गोदमे रोता है। तब शायद कुछ शान्ति मिल सके। परन्तु शायद इस जन्ममे शान्ति नही मिल सकेगी। न मालूम क्यो भैया, अब तो जीवनसे मेरा बिलकुल दिल भर गया है। जीवनका तनिक भी मोह नही रह गया। जी चाहता है जिस किसीसे जितने भी बुरे व्यवहार मेरे प्रति किये जा सके कर ले। और बस मै रो-रोकर प्राण दे दूँ। आप शायद मेरी इन बातोपर हँसे, किन्तु मुझे इसकी चिन्ता नही। मेरी परिस्थितियाँ देखिये और विचार कीजिये।

अब क्या लिखूँ। तुम मत आना भैया।

तुम्हारी—हेम

पत्र न० १०—

प्रिय हेम,

अपने सामने सब कुछ जलता हुआ मै नही देख सकता हेम, इतना

ोनों कमरेमे आये। झिझकती-सी हेमने वावूजीकी ओर सिर झुकाया। जैसे पूछा—क्या है ?

'हेम, यह शैलेन्द्र क्या कहता है ?' वावूजीने पूछा। स्वर वैसा ही शान्त था—'तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा ?'

हेम चुप खडी थी सिर झुकाये।

वातावरण जैसे पल-पलपर भन्न-भन्न करता बोझिल हो चला। 'तुम्हे यह सब पसन्द है या नहीं, साफ-साफ कह दो।' बडे प्यारसे उन्होंने पूछा।

मैं इस प्यारसे काँप उठा। मुझे लगा वह भयकर विस्फोट अब हुआ, अब हुआ। कहीं क्रोधमें मार न बैठे, मैंने इधर-उधर देखा, कोई लकडी-डण्डा है या नहीं। मौसाजीके हाथके पास ही 'रूल' रखा हुआ था। वे धीरे-धीरे अँगुलीसे उसे हिला रहे थे। मैंने निश्चय कर लिया कि चाहे मुझे रूल पकडकर इतने दिनोंके आदर-सम्मानको ठोकर मारकर अकड जाना पडे पर हेमको तनिक भी कुछ नहीं होने दूंगा।

'क्यों, बोलो, राजी हो तुम ?' फिर पूछा, स्वर जरा तेज था।

बडे आत्मविश्वासके साथ हेमने सिर हिलाया—'हाँ'।

और मुझे लगा, झन्नाटेमें नाचता हुआ कमरा ऊपर आकाशमें उठने लगा—उठने लगा। फिर एकदम आधा होकर तेजीसे घूमता हुआ नीचे धँसने लगा—नीचे—नीचे अन्धकारमें।

अन्धकारमें डूबते हुए मुझे लगा, जैसे एकदम हेम फूट-फूटकर रो पडी।

'क्या जीवन है हमारा भी !' और निखिलने एक दीर्घ निश्वास छोडा—भावुक नेत्रोसे चाँदनीमे वह अपना मार्ग देखने लगा। पहले भागनेका श्रम था, अव धीरे चलनेके कारण उसके शरीरमे शीतका कम्पन वढता जाता था।

'इतना कहे देती हूँ निखिल, दलपति चाहे आज्ञा दे या न दे, यह पुलिस ऑफिसर मुझसे वच नही सकता !' कहकर आरतीने धीरेसे अपने निम्न अधरको दवाया। फिर वह निखिलके साथ कदम मिलानेका प्रयत्न करने लगी।

'मै कई दिनोसे देख रहा था—तीन आदमी सदा मेरे साथ रहते थे, कभी वदलकर कोई आ जाता कभी कोई', निखिलने अपने दोनो हाथोको मुट्ठी वाँधकर छातीपर कस लिया। वोला—'तो भी आज हमारा पुनर्जन्म हुआ है—मेरी समझमे नही आता कि वदमाशोको हमारा इस खडहरमे होनेका पता कैसे लगा।'

'कैसे भी लगा हो, मुझे तो प्रसन्नता इस वातकी है निखिल, दलपतिने जो काम दिया था उसमे हम सफल हो सके और यह पुनर्जन्म और जन्म तो हमारे साथ ही है। जवतक कही भी क्रान्तिकारी है—और राजभक्त पुलिस है, यह प्राणोपर खेल जानेके अभिनय होते ही रहेगे—ओर मेरा तो विश्वास है निखिल, कि ऐसी घटनाएँ होती रहनी चाहिएँ, यह स्फूर्ति प्रदान करती है !' आरतीने गम्भीरतासे कहा।

निखिलने एक वार फिर आरतीके मुखकी ओर देखा, इस वीस वर्षीया युवतीमे इतना साहस कहाँसे आ भरा है—उसे विश्वास नही हुआ कि यह आरती ही वोल रही है। थोडी देर वह आश्चर्य-चकित हो आरतीकी ओर देखता रहा फिर एकदम चौंककर वोला—'तुम इसे सफलता कहती हो आरती ?' फिर आवेशमे शीघ्रतामे अगले शव्द खोजने लगा, किन्तु एकदम वोला—'यह महान् सफलता है ! तुम विश्वास रक्खो, हमारे दलमे ऐसे काँइयाँ अगरेजको मारनेका साहस करनेवाला कोई नही है—

हो, यही एक पहलू है जिसको लेकर हमारे—मेरा मतलब क्रान्तिकारियोसे है—दलपर सबसे अधिक प्रहार किया जाता है। फिर दलपतिने हमे जिस कामसे भेजा है वह हमारे लिए मुख्य है और ये बाते तो गौण है, क्या रक्खा है, इन प्रेम, प्रणय, अभिसारमे ! तुम्हे आश्चर्य होगा, कि सह-शिक्षाके वातावरणमे एम० ए० करनेके पश्चात् भी मै प्रेम करनेके पक्षमे नही हूँ। रूढियाँ—जो हमारा मार्ग रोके है, अवश्य इस योग्य है कि हम विद्रोही बनकर उनकी उपेक्षा करे—उन्हे तोड दे, पर स्वच्छन्दताका पर्याय रगरेली तो नही है ! मुझे हँसी आती थी, जब मै देखती थी, हमारे 'होस्टल'की कोई लडकी किसी लडकेकी तस्वीरको छिपाकर किताबमे रक्खे हुए है—एकान्तमे उसे घटो देखती है, कोई लडकी छातीपर कहानियोकी कोई पत्रिका रक्खे हुए सिसक रही है—इसलिए कि उसकी कहानीने बेचारीकी सुषुप्त भावुकताको उभाड दिया है, कोई घटो एक ओर ही अपलक देखती रहती है—बडी दीर्घ उच्छ्वास और नि श्वास छोडती है, जीवनसे निराश कोई रेलकी पटरीपर सो जानेकी मधुर कामना-को पाले हुए है—कितनी निर्लज्ज और बुद्धिहीन बाते है ये !' और धीरेसे, जैसे निखिलकी मनुहार करती हुई आरती हँस दी।

'तो तुम प्रेममे बिलकुल भी विश्वास नही करती ?' धीरेसे निखिलने सिर उठाया—आरतीके बात करनेके ढगसे वह अपनी चोट भूल रहा था।

'रत्तीभर नही' उत्साहित होकर आरतीने कहा—'मनके और विकारो-की भाँति प्रेम भी अचिर है—विशेषकर विवाहसे होनेवाला प्रेम ! विवाहके पहले होनेवाले प्रेमका चरम विवाह है, पर यथार्थ प्रेम जिसे तुम स्वर्गीय, अमर, कहते हो—विवाहके पश्चात्से प्रारम्भ होता है। क्योकि वह स्वाभाविक है साहचर्यमे उत्पन्न होता है।'

'अच्छा ?' गहरी साँस लेकर निखिलने कहा। वह एकदम चौका। एक सफेद-सा खरगोश उनके सामनेसे दौडता हुआ चला गया।

'कहाँ चल रही हो आरती !' निखिलने एकदम पूछा और रुक गया।

आरतीने कम्बल फिर ओढ लिया।

'तुम्हारे नाम कई वॉरट निकल चुके है, आरती' समय वितानेके लिए निखिलने वार्तालाप प्रारम्भ किया।

'उहुँ—यह तो निकलते ही रहते है।' लापरवाहीसे आरतीने कहा, फिर पूछा—'इन्ही अगरेजोके मारनेके सिलसिलेमे निकले होगे ?'

'हॉ, पेडके तनेसे लगते ही निखिलपर आलस्य चढने लगा—और वह क्रमश बढता जाने लगा।

दोनो फिर चुप हो गये।

निखिल उनीदा-सा हो रहा था—पर शीतके कारण वह सो नही सक रहा था। हवाके एक झोकेसे कॉपकर वह सचेत हुआ।

'कम्वल ले लेनेमे कोई बुराई तो नही थी निखिल!' आरतीने अपनी गरदन घुमाकर किसी आशकासे इधर-उधर देखा। घने पेडके नीचे एक तो वैसे ही अन्धकार था, फिर आस-पासकी घनी झाडियोने चॉदनीको यथाशक्य दूर रखनेकी चेष्टा की थी।

'नही आरती, हॉ एक वात बताओ।'

'पूछो—शर्त यह है, कि बुद्धिसे कही गई हो।' आरती दूर चॉदनीकी ओर निर्निमेष देखती हुई मुस्कुराई।

'हॉ, हॉ—उससे तुम निश्चिन्त रहो! मै पूछता था, जिस देशके लिए हम रात-दिन खून-पसीना एक कर देते है, प्राणोको हथेलीपर धरे फिरते है, उसी देशके वासियोसे अपने प्रति नीच चोर डाकुओका-सा व्यवहार देखकर तुम्हे कैसा लगता है ?—मुझे तो भई इतना क्रोध आता है कि इन सबको गोली मार दूँ और खुद भी मर जाऊँ—चूल्हेमे गया देश।'

'और मुझे ?—मुझे तो भाई, दुख होता है, रुलाई आती है। कभी-कभी इनकी मूर्खतापर हॅसी भी आती है—कुछ हो निखिल, एक दिन आयेगा जब यह लोग हमे पहचानेगे पूजेगे—आदर करेगे। और सच वात तो यह है कि मै इस विषयपर कभी सोचती ही नही!'

निखिलकी समझमे नही आ रहा था कि उसकी आरतीके साथ एक ही कम्बलमे रात बिता देनेकी बात सुनकर दलपति इतने अधिक गम्भीर और चिन्तित क्यो हो उठे है।

'अच्छा, खैर मै तुम्हारी सफलतापर तुम्हे बधाई देता हूँ।' गम्भीर मुद्रासे अपने सिरपर हाथ फेरते हुए दलपतिने कहा। उनकी इस बधाईमे तनिक भी उत्साह नही था।

अपनी प्रशसासे सकुचित निखिल थोडी देर सिर झुकाये मौन खडा रहा फिर धीरेसे उसने पूछा—'तो अब आज्ञा है?'

कुछ सोचते-से दलपतिने एकदम सिर उठाया—'हॉ—नही, मुझे तुमसे कुछ काम है निखिल।' और वे उठकर खडे हो गये।

'आओ बाहर।' उन्होने यह कहकर निखिलके कन्धेपर हाथ रख दिया। दोनो कमरेसे बाहर आये। किशोर सूर्य तारुण्यपर अधिकार कर रहा था—किरणे प्रखर हो गई थी।

'कहो, 'रिस्क' लेनेमे कुछ आनन्द आता है?' उन्होने विचित्र स्वरमें पूछा।

निखिल समझ गया, कि दलपति कोई मुख्य बात कहना चाहते है उसीके लिए यह भूमिका या वातावरण तैयार किया जा रहा है। किन्तु बात कैसी होगी—इस बातका अनुमान वह नही लगा सक रहा था। वह सोचने लगा—इस बातमे और साथ सोनेकी बातमे क्या सम्बन्ध है।

'हॉ बताया नही तुमने।' दलपतिने फिर पूछा, और एकदम अप्रत्याशित रूपसे बोले—'निखिल, इस समय मै तुमसे दलपतिकी हैसियतसे कोई बात नही पूछ रहा हूँ। इस समय तो यो समझ लो—हम और तुम मित्र है—मै जो कहूँगा तुम्हारी भलाईके लिए।'

'आनन्द-वानन्द क्या?' अब निखिल थोडा खुला। उसने लक्ष किया, दलपति कोई बात कहना चाहते है पर कह नही पा रहे है, पर वह कहता ही गया—'जो सामने आ जाता है, उसे तो भुगतना ही पडता है।'

दलपति सयत हो गये—'यदि तुमने अपने उद्देश्यको गौण बना दिया तो!' उनके स्वरमे दृढताका आभास था। वे कहते गये—'आरती, जब हम लोग इसमे—दलमे—सम्मिलित हुए थे तो प्रतिज्ञा-पत्रपर रक्तसे हस्ताक्षर किये थे कि देशकी स्वतन्त्रता हमारा प्रमुख लक्ष्य होगा। इसके लिए हम दलके नियमोके अतिरिक्त ससारका कोई बन्धन नही मानेगे—और जबतक अपने इस लक्ष्यको नही प्राप्त कर लेगे, तबतक चैनसे नही बैठेगे!'

'हाँ, इसमे सन्देह नही कि हमने ऐसी प्रतिज्ञा की थी।' शान्त स्वरमे आरतीने कहा।

'अपने मार्गपर चलनेवालोकी पहिली गलतियोको देखकर हमने चारित्रिक दृढताको पहला स्थान दिया!' दलपतिने कहा, 'और . और अब ।' वे हिचक रहे थे।

'क्या कहना चाहते है आप—स्पष्ट कहिये न?' आरती प्रयत्न कर रही थी कि उसका स्वर अब भी शान्त रहे।

'और स्पष्ट चाहती हो?' कहकर दलपतिने निखिलकी ओर देखा।

'तो आपको मेरे चरित्रपर सन्देह है?' उसका स्वर कठोर था—शरीर तन गया।

'नही नही' दलपति जैसे अपनी सफाईके लिए शब्द खोजनेका प्रयत्न करने लगे।

आरतीने सिर झुका लिया। उसने भी एक बार निखिलकी ओर देखा, फिर थोडी देर चुप रही। बोली—'अभीतक इस दलका नियम मैंने कभी नही तोडा—आज तोडना पड रहा है। मेरा त्यागपत्र स्वीकार करनेकी कृपा करेगे आप?—आप विश्वास रखिये—आरती विश्वास-घातिनी—क्षुद्र नही है।' वह इस प्रकार कह रही थी मानो पिछली सारी बाते एकदम भूल गई हो।

'तुम्हे कल उत्तर दिया जायेगा पर ।'

अनुमान लगा लिया कि उसपर कोई स्त्री सवार है। आधुनिक स्त्रियोकी इस उच्छृखलताको मन ही मन कोसता, वह अपनेको सयत करने लगा। तभी पीछेसे फिर मोटरका 'हॉर्न' गरज उठा। झल्लाता हुआ वह एकदम सडकके किनारे जा खडा हुआ। एक बहुत वडी पुलिस-लॉरी उतने ही वेगसे सन्नाती हुई सामनेसे निकल गई। आश्चर्यसे मुँह खोले वह समझनेका प्रयत्न करने लगा।

आरतीको सामनेका मार्ग नही दिखाई दे रहा था—वह अन्धाधुन्ध दौड रही थी।

× × ×

आरतीकी साँस तेज चल रही थी। कुछ भी वात वह सोच ही नही सक रही थी—जैसे उसके मस्तिष्कमे निरन्तर आँधी चल रही हो। छातीके अन्दर जैसे दूसरी मोटर साइकिल दौड उठी हो। घवराई हुई वह तत्क्षण पासवाली गलीमे विना इधर-उधर देखे दोडने लगी—पीछेसे भागकर जाती हुई पुलिस 'लॉरी'का भारी स्वर उसने सुना! पास ही एक द्वार था, वन्द। उसने दोनो हाथोसे उसमे धक्का दिया—जैसे वह भरपूर शक्तिसे ही धक्का देनेके लिए दौडी चली आ रही हो! वह थोडी देर खडी हॉफती रही। कमरमे खुसे हुए साडीके पल्लेको निकालकर सारे मुँहका पसीना पोछा। भीतरसे किसीने द्वार खोलकर देखा—द्वारपर स्त्री खडी है—यह सोचकर द्वार खोलनेवालेने पूरा द्वार खोल दिया।

आरती स्तब्ध खडी रह गई—उसके सामने उसकी वाल-सखी लीला खडी थी।

'है!' आरतीके मुखसे निकला उसने घवराकर इधर-उधरके मकानोपर दृष्टि डाली। लीला वाल विधवा थी, घरवालोकी सख्तियोसे घवराकर वह गायव हो गई थी। आरतीको निश्चित रूपसे मालूम था, इधर-उधरके काफी 'अनुभवो'के पश्चात् वह वेश्या हो गई है। आस-पासके

उसकी इच्छा हुई, कि इसी समय इस घृणित स्थानसे उठकर अपनी लक्ष्य-प्राप्तिमे लग जाये।

'लीला' करवट वदलकर उसने कहा—'कल वहुत सुबह ही चली जाऊँगी—मै, लीला!'

'सुवहकी सुवह देखी जायेगी। तुम सो तो जाओ, दो बज रहा है!' थोडी देर चुप रह कर वह बोली—'और आरती, एक वात कहूँ—किसी वुरी नीयतसे नही कह रही मै—तुम्हे कही भी शहरके इस भागसे अधिक सुरक्षित स्थान नही मिल सकता—कमसे कम तुम्हारे-जैसे कामको सुविधाजनक!' लीला चुप हो गई। तभी पासके किसी मकानसे किसी पुरुषकी भद्दी हँसनेकी आवाज सुनाई दी—वासनामे डूबी हुई-सी जैसे शराबकी दुर्गन्धिमे शराबोर हो!

आरतीने सुना, लीलाकी वात भी सुनी—सोचा, उठकर एक जोरका तमाचा इस कमीनी स्त्रीके मुखपर दे। जैसे जुगुप्सा—वीभत्स घृणाका ज्वालामुखी उसके अन्दर फूट पडा। उसे लगा उसे 'कै' हो जायेगी। हाँ, वह देशके कार्यके लिए पुलिसके कुत्तोसे सुरक्षित स्थान चाहती है, किन्तु ! उत्तेजनासे वह बैठ गई। उसकी मचलन जैसे एकदम उफन पडी—उसे लगा जैसे वह अपनी इस मचलनपर अधिकार नही कर सक रही है—वह अवश होती जा रही है, कोई दानव उसके ऊपर चढा चला आ रहा है। उसने अपना 'रिवॉल्वर' टटोलकर देखा, और अनजाने ही उसकी उँगलियाँ घोडेपर तन गई। प्रबल आवेग उसके अन्दर उठा—उठा कर मार दे एक गोली इस नीच स्त्रीको!

आवेशसे वह उठ कर खडी हो गई।

'क्यो?' लीलाने सिर उठा कर पूछा।

'कुछ नही, वाहर काम है मुझे, अभी आई दो मिनटमे!' इच्छा न करते हुए भी उसके मुँहसे निकल गया। रुद्ध विक्षोभ वाष्पकी महान्

ख़ानदानी घर !

मेरी इच्छा हो रही है कि धाड मार-मारकर, गला फाड-फाडकर रो उठूँ। छाती फाडकर इतनी जोरसे चीखूँ कि यह पुराना मकान कोलाहलसे भरकर फट जाय। पर लाख प्रयत्न करनेपर भी अवरुद्ध कठसे सिसकियाँ निकल पा रही है । मेरे होठ काँप-काँपकर ऐठ जाते है, पर एक शब्द भी मुँहसे नही निकल पा रहा, जैसे किसीने मशकमें खूब पानी भरकर ऊपरसे कस दिया हो—अन्दर वह पानी खौल रहा है, उबल रहा है। मुझे लगा, यदि मै ज़ोरसे नही रोती तो फेफडे फट जायेगे, जैसे मेरी पसलियाँ तनकर तडकने तककी सीमा तक आ पहुँची है। किन्तु मुखसे वही रुँधी हुई सिसकियाँ निकली चली जा रही है। मै रो रही हूँ—पिघल-पिघलकर बह रही हूँ।

मेरी खुली हुई हथेलियाँ एक दूसरीके ऊपर रखी हुई है और उनपर उस बडे भारी खानदानी पलगका पाया रखा हुआ है। पलगपर सफेद चादर ओढे बिल्कुल निश्चित वह खर्राटे मार रहा है, जैसे कोई नई घटना नही है। मै खूब जोरसे कह रही हूँ—वह मेरा पति है ! उफ !

रातके इस भीषण सन्नाटेमे जैसे असह्य दर्दसे तडप-तडपकर मै मरी जा रही हूँ। मुझे लग रहा है जैसे लोहेके कोल्हूमे मेरी हथेलियोका खून निचोडा जा रहा है। जमीनपर पडी हुई मै बिलखनेकी कोशिश करती हूँ—पर जीभको पकडकर जैसे कोई ऐठ रहा है।

करोडो कठोसे करोडो बार दुहराये शब्द मेरे मुखपर आते है, "हे भगवन्, किन पापोका दण्ड है यह ! कोनसे जनमके करम अब विकराल मुँह खोलकर अपना यह बदला चुका रहे है—हे जगदीश्वर, उठा लो मुझे !" किन्तु मुझे लगता है, जैसे मेरे ये शब्द मेरे कलेजेके अन्तर्तमको चीरकर

रोटी उन्हे ही करनी पडती है—दोनो समयकी। और अपराध केवल यह था कि बेचारी सुबहसे दो बजेतक भूखी नही रह सकी—दो आनेकी उन्होंने जलेबी मँगा ली थी। जलेबी फेककर उनकी पीठपर दाँत भीचकर जो घूँसा पडा था, उसे उनकी रीढकी हड्डी न जाने कितने दिन याद रखेगी! हमारे घरका नियम है कि सुबह जबतक सब पुरुष न खा ले, स्त्री एक कौर भी मुँहमे नही दे सकती, और पुरुष है कि कोई एक बजे आता है, कोई ढाई बजे। चूल्हेके सामने बैठे-बैठे कैसी भूखकी आग पेटमे लहका करती है, इसे हम ही जानती है—रातको—एक बज जाता है। लेकिन मुँहसे एक शब्द नही निकाल सकती—बडे घरकी बहुएँ है न!

कभी-कभी जब जीजी गर्वसे कहा करती है—"इस घरमे बीरबल रहा करते थे, हमारे पुरखोको यह मकान शाहजहाँने इनाममे दिया था!" तो मै इस मिथ्या दम्भपर दाँत पीसकर रह जाती। मेरे बाप भी कैसे अन्धे थे कि इस दम्भपर रीझ गये—कैसी खानदानी जगह मुझे ब्याहा है! इच्छा होती है, काश! गलेमे ढोल बाँधकर मै ढिढोरा पीट सकती कि ये बडे घरकी बाते है। उन चमचमाती ऊँची दीवारोके पीछे कैसा नाच होता है, कैसा नरमेध होता है—उफ!

पीडासे मेरी नसे तनकर सुन्न हुई जा रही है—निश्चेतन विवशताकी अनुभूति अपनी समस्त कटुतासे मेरी नस-नसका रक्त जमाये दे रही है। क्या मै यो ही मर जाऊँगी, क्या मेरे प्राण ये लोग यो ही धीरे-धीरे ले लेगे?

प्राण?—हाँ प्राणोका इनके लिए क्या मूल्य है! प्राण इनके लिए खेल है, क्योकि हम पैरोकी जूतियाँ है। और इनकी पहली पत्नीके विषयमे सुनती हूँ तो सारे शरीरपर बडे-बडे रोगटे खडे हो जाते है। वह जीजी जब कभी हमारे ऊपर आतक जमानेको कहती है—"जो कोई मेरे खिलाफ जाता है उसकी खैर नही है।" और फिर वे कैसी रस ले-लेकर पहली बहूके विषयमे बताती है कि कैसे उसके हाथ-पाँव बाँधकर उसके ऊपर मार पडी थी—मोटे-मोटे रस्सोसे! और जब पिटते-पिटते बेचारी

होकर यहाँ पडी है और तव भी तो नही चेतती। आखिर मैंने इनका छीन क्या लिया है, क्यो सवके सामने मुझे बदनाम करनेपर तुली रहती है! सिर्फ यही धोती मेरे पास है, इसीको आधा धो लेती हूँ—आधा सुखा देती हूँ, आधी पहिनती हूँ—सिर्फ इसलिए कि मैंने पत्र विना पूछे डाल दिया अपने घर? इसीलिए यह अपमान—प्रताडना? कोई मिलने आता है तो वह कम्वख्त खूँटियोपर कपडे टाँग देती है और उससे कहती है—"घरमे कपडे तो निरे टँगे है, वहू ही फूहडिया है, पहिनना ही नही जानती।" उस समय मेरे अन्दर कैसे तूफान मचलकर रह जाते हैं—कैसे इसकी मक्कारी और चालाकीसे भरी आँखे वाहर निकाल लूँ! उस दिन खाना खाते समय,—पास ही सुराहीमे पानी रखा था—माँगा, "पानी दो।" मेरे हाथ चूल्हा पोतनेके हो रहे थे, कह दिया 'जीजी जरा उडेल लो,' वस इसीपर भरी सुराही मेरे सिरपर उठाकर मारी,—इतने जोरसे कि आज भी सिर छूनेसे दर्द होता है—वाल नही काढती। और रातको जव दूध लेकर गई, तो इस अन्धेने इतने जोरसे ठोकर मारी थी कि मै दस सीढियोसे लुढकती हुई ओधी-सीधी गिरी—रातभर रोती रही, पर कोई सुननेवाला नही था।

और आज मै पूछती हूँ मेरा क्या दोप था? पजावके दगोमे अपना सव कुछ लुटाकर आई हुई एक स्त्रीसे वात कर रही थी, वेचारीकी व्यथा सुनकर आँखोमे आँसू आ गये—वस ऊपरसे आवाजे पडी, 'क्या कर रही है, उस रडीके साथ भागेगी, निकल जा उसके साथ भीख माँगने!' क्या-क्या कथनीय और अकथनीय नही कहा गया। मैंने धीमेसे जिठानीसे कहा—"जीजीमे दया नही है।" सुन लिया तो फिर फौरन ही रोने लगी, पहुँची, भैयाके पास! और यह भैया?—कमरेमे आई तो बोला—"हाथ रख यहाँ, रख, रखनी है या नही! क्या कह रहा हूँ, सुन रही है?" और मेरे दोनो हाथोपर इस खानदानी भारी पलगका पाया रखकर सो गया। रोते-रोते मै वेदम हो गई हूँ। वाहर

बिलख-बिलखकर कहती हूँ, मुझसे यहाँ नही रहा जायेगा—मैं मरना नही चाहती, अभी मेरी उम्र ही क्या है ?—केवल सोलह वर्षकी ! सच कह रही हूँ मै मरना नही चाहती, मुझे ससारमे देखने दो, मुझे जीने दो !

लेकिन यहाँ कोई नही जीने देगा—कोई मुझे सुखकी साँस नही लेने देगा—यहाँ सब कसाई है, सब हत्यारे है ! मेरे मुँहसे भर्राईसी चीख निकलती है—"अम्मा" अम्मा क्या तुम सुन रही हो ! नही, तुम नही सुन सकती माँ ! चीख सुनकर वह करवट बदलकर फिर चादर तानकर सो गया है ! पहलीकी तरह यह मुझे भी मार देगा, इसका कुछ ठीक नही है।

तो मै यो ही मुँह बन्द किये हुए मर जाऊँ ? यहाँसे भाग जाऊँ ? तो कही डूब जाऊँ ? कुएँमे गिर जाऊँ ? दूर भाग जाऊँ, जहा किसीको पता भी न लगे—कोई जान भी नही पायेगा, ये दुष्ट वहाँ पहुँच भी नही पायेगे। लेकिन क्या करूँगी ? पढी-लिखी मैं हूँ नही !

और मेरे अन्दर एक आवेश-सा उठा है, एक तीव्र झटका-सा मुझे अपने अन्दर अनुभव होता है, जैसे मेरे अन्दर कोई कडकती बिजली-सी तडपडाती है ! मैं यहाँ नही रहूँगी, नही रहूँगी ! देखे मुझे कौन रोकता है ? मै एकदम तनकर बैठ जाती हूँ, घुटनोके बल बैठकर जोरके झटकेसे दोनो हाथ बाहर खीच लेती हूँ, मेरी हथेलियोका पृष्ठ भाग पृथ्वीसे छिल गया है—उनमेसे खून टपकने लगा है, लेकिन मुझे चिन्ता नही है, डर नही है मुझे भाग जाने दो—दूर. . .दूर इस रौरवसे दूर !

मै दौडकर किवाड खोलती हूँ—बाहर भी भीषण अन्धकार है, एकदम काली दीवार-सी खडी है सामने ! किवाड खोलते ही मुझे दिखाई देता है, सामने काले क्षितिजपर आगकी प्रतिक्षण बढ़ती लपलपाती लपटोसे बना एक प्रश्नवाचक चिह्न भीषण दैत्य-सा खडा है, अन्धकारमें चमक